The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

महात्मा जोतिराव फुले के वैज्ञानिक एवं तार्किक विचारों का मूल्यांकन

डॉ. प्रियंका पासवान
सहायक प्रोफेसर
श्री रामफेर शिवफेर महाविद्यालय निमड़ी अयोध्या
डॉ. सूर्य भान रावत
प्रो.- समाजशास्त्र
किसान पी.जी. कॉलेज बहराइच

सारांश

महाराष्ट्र मे भारत में महात्मा जोतिराव फुले का प्रादुर्भाव 19वीं शताब्दी में हुआ था। उस समय देश में अंग्रेजों का एक औपनिवेशिक शक्ति के रूप में आगमन हो चुका था और भारत औपनिवेशिक पराधीनता एवं शोषणतन्त्र का शिकार बन चुका था। साथ ही देश सामाजिक दृष्टि से पतनोन्मुख हालात से जूझ रहा था। तत्कालीन भारतीय समाज विशेषकर हिन्दू समाज के विषय में महान पाश्चात्य सामाजिक चिन्तक मैक्स वेबर ने लिखा था हिन्दू धर्म दरअसल जादू-टोना अन्धविश्वास और अध्यात्मवाद की खिचड़ी बनकर रह गया था इतिहास के उस कालखण्ड में भारतीय समाज धर्म सम्प्रदाय और जाति के आधार पर पूरी तरह विखण्डित था। वस्तुतः विदेशी आधिपत्य एवं हस्तक्षेप की परिस्थितियाँ काफी हद तक स्वयं भारतीयों की कमजोरियों के कारण ही बनी थीं। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में भारत के इतिहास में रुके या बन्धे पानी की तरह स्थिर-परस्त होकर धर्मज्ञों ने सत्य के चिंतन के पथ को त्याग दिया था। महात्मा फुले कालीन भारतीय समाज में बड़े स्तर पर जाति-भेद प्रचलित था ।

कुंजी शब्द – वर्ण व्यवस्था, जाति भेद, अंध विश्वास, अस्पृश्यता, सामाजिक स्तरिकरण ।

जाति व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज की जड़ें प्राचीन-कालीन वर्ण व्यवस्था में पाई जाती थी। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था ने जाति व्यवस्था को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत न केवल वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित हो गई अपितु चार वर्णों के स्थान पर चार हजार से भी अधिक जातियाँ अस्तित्व में आई। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत देश में काफी जटिल सामाजिक स्तरीकरण उत्पन्न हुआ। जाति व्यवस्था की ऊँच-नीच की अवधारणा के चलते ही अस्पृश्यता जैसी घृणित सामाजिक संस्था भी अस्तित्व में आई जिसके अन्तर्गत अनेकों निम्न जातियों को अस्पृश्य वर्ग का दर्जा दे दिया गया। उन्हें हिन्दू होने के बावजूद हिन्दू धर्म और समाज में किसी भी तरह के धार्मिक सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार हासिल नहीं थें।

महार मांग चमार चाण्डाल व भंगी जैसी अस्पृश्य जातियों के लोग जिन्हें महात्मा फुले ने अपनी रचनाओं में अतिशूद्र कहकर सम्बोधित किया है सामाजिक अन्याय के शिकार बने हुए थें। इसी तरह समाज में पुरुष-प्रधानता छाई हुई थी। इसके चलते स्त्रियों की दशा बहुत खराब हो चुकी थी और उन्हें लैंगिक भेदभाव का सामान करना पड़ता था। नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व लगभग समाप्त हो चुका था।

कन्या-हत्या की कुप्रथा के अलावा स्त्रियों को अनेक अन्य सामाजिक कुप्रथाओं जैसे बाल-विवाह बहु-विवाह पर्दा प्रथा विधवा प्रथा सती प्रथा आदि का शिकार बनना पड़ रहा था। इस प्रकार भारतीय समाज मे लिंगभेद भी जातिभेद के समान एक बड़ी समस्या के रूप में पाया जाता था। भारतीय समाज में व्याप्त इस अन्याय जड़ता एवं रूढ़ीवाद को दूर करने के लिए 19वीं शताब्दी में अनेक समाज सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। लगभग आधी शताब्दी तक देश में ऐसे आन्दोलन काफी तेजी से चले। ऐसे ही समाज सुधार आन्दोलनों में से एक आन्दोलन का सूत्रपात महान सुधारक महात्मा जोतिराव फुले ने महाराष्ट्र में किया। महात्मा फुले ने तत्कालीन हिन्दू समाज व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि इस व्यवस्था के लिए कट्टरपंथी पुरोहित वर्ग का प्रभुत्व उत्तरदायी है। दरअसल फुले की निम्न जातिय पृष्ठभूमि के चलते उनका ऐसा निष्कर्ष स्वाभाविक था । इसलिए उन्होंने अपनी जो विचारधारा विकसित की उसमें सबसे अहम् स्थान उक्त व्यवस्था की आलोचनात्मक मीमांसा को दिया था। उनकी विचारधारा के दो पहलू नजर आते हैं प्रथम विध्वंसात्मक और दूसरा निर्माणात्मक ।

समाज व्यवस्था की आलोचनात्मक मीमांसा पर आधारित है और इसे उखाड़ फेंकने पर जोर देता हैं वहीं दूसरे पहलू में वैकल्पिक समाज व्यवस्था की स्थापना की बात कही गई है। फुले ने अपनी रचनाओं में लिखा कि यदि दुनिया के तमाम देशों के इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा कि केवल हिन्दुस्तान में ही यह देखने को मिलता है कि ब्राह्मण नाम की किसी जाति या समुदाय ने ने अपने आपको बड़े अहंकार से सबसे उच्चतम एवं श्रेष्ठतम घोषित कर दिया वे लोग हमेशा सामाजिक कुप्रथाओं को शास्त्रोचित्त बताकर उसे धार्मिक आधार प्रदान करते रहें। ऐसे में ब्राह्मणवाद हिन्दू धर्म एवं समाज की उनकी लगभग सारी समस्याओं के लिए जिम्मेवार था। यह हिन्दुओं के धार्मिक सांस्कृतिक सामाजिक एवं नैतिक पतन के लिए काफी हद तक उत्तरदायी था।

जोतिराव फुले ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत पुरोहितों द्वारा अशिक्षित किसानों व महिलाओं से की जा रही ठगी व लूट-खसोट का अपनी रचनाओं में बार-बार जिक्र किया हैं। वे लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रहों नक्षत्रों अपशकुनों आदि का डर दिखलाकर अनपढ़ किसानों से धन बटोरते रहते थें और भोले-भाले शूद्र अपने गहने-बरतन तक को बेचकर उनके लिए दान-दक्षिणा का प्रबन्ध करते थें। उन्होंने लिखा है कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था का प्रभाव इतना व्यापक था कि तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज में कोई भी नागरिक उनकी आज्ञा के बिना कुछ भी कार्य नहीं कर सकता था । किन्तु ब्राह्मण आम लोगों विशेषकर शूद्रों-अतिशूद्रों से इतनी नफरत करते थें कि वे किसी शूद्र का छुआ हुआ भोजन तो क्या पानी भी नहीं पीते थें। फुले के मतानुसार ब्राह्मणों ने इस बात की पूरी सावधानी रखी कि शूद्र किसी भी तरह पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाए। इसी कारण तत्कालीन समय के ब्राह्मण अपनी अपवित्र व झूठी किताबों को शूद्रों के सामने नहीं पढ़ते थें। फुले के अनुसार शूद्रों-अतिशूद्रों के मन में ईश्वर के प्रति जो भक्ति-भावना होती थी ठीक वैसे ही भावना ब्राह्मणों ने उनके मन में अपने लिए उत्पन्न करने पर मजबूर किया। फुले ने तर्क दिया कि भगवान और मनुष्य के बीच किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती परन्तु ब्राह्मणों ने स्वयं को यह पद देकर अपनी अजेय शक्ति को हिन्दू समाज में स्थापित कर दिया वे केवल अपने स्वार्थ को देखते थें तथा मात्र शोषण करने की प्रवृति रखते थें।

इस आधार पर फुले ने विचार व्यक्त किया कि भारत में विद्यमान जातीय एवं लैंगिक विषमताओं व तमाम रूढ़ीयों का मुख्य कारण था ब्राह्मणवाद वह केवल विषमता-मूलक हिन्दू समाज को जन्म देने वाला विचार ही नहीं था अपितु उस विषमता को चिरंजीवी बना देने वाला वाद भी था। उसके कारण शूद्रादि-अतिशूद्रों तथा महिलाओं पर ऐसी वैचारिक गुलामी लादी जिसने उनकी सोच स्वतन्त्रता और मानव अधिकार कुंद हो गए दिये। उन्होंने मत प्रकट किया कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था के कारण ही उच्च जातियों एवं निम्न जातियों के मध्य सामाजिक तनाव उत्पन्न हुआ। फुले का विचार था कि ईसा के जन्म से लगभग 1500 वर्ष पहले आर्य लोग ईरान से भारत में आए थें। उन्होंने यहां के मूल निवासियों पर हमले किए और उनको कई युद्ध तथा संघर्षों में हराया। तत्पश्चात् उन्होंने वर्ण व्यवस्था की नींव रखी जिसमें शूद्र नामक सबसे निचले वर्ण में उन लोगों को रखा गया जो इस देश के मूल निवासी थें। इन लोगों को दास दस्यु महार असुर

आदि कहा गया। यहीं से भारत में जातिभेद की उत्पत्ति हुई ब्राह्मणवादी व्यवस्था में शूद्रों में से कई समूहों को बिल्कुल अलग-थलग करके दबी-कुचली स्थितियों में धकेल दिया गया।

उनको अवर्ण अशुद्ध अस्पृश्य आदि नाम दिए गए। यहां तक कि उनको चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से बाहर करते हुए पंचम वर्ण का माना गया। इन तमाम शूद्रों-अतिशूद्रों के साथ इतिहास निरन्तर भेदभाव किया जाता रहा। फुले ब्राह्मणों द्वारा निम्न जातियों पर थोपी गई उक्त गुलामी की तुलना में अंग्रेजों की गुलामी को ही बेहतर मानते थे क्योंकि अंग्रेजी राज के अन्तर्गत तो बहुसंख्यक निम्नवर्गीय प्रजा को तो जातिभेद की व्यवस्था से राहत ही मिली थी। फुले अंग्रेजी राज को इस बात के कारण भी अच्छा मानते थें कि उनके शासनकाल में ही विभिन्न विदेशी विद्वानों ने पहली बार-बार जातिभेद रूपी गुलामी के आधार स्तम्भों अर्थात् ब्राह्मणवादी ग्रंथों का भाण्डाफोड किया जिसके कारण निम्न जातीय लोगों की आँखें खुल पाई। महात्मा फुले ने अपने चिन्तन में भारत में विद्यमान ब्राह्मणवादी व्यवस्था का काफी आलोचात्मक विश्लेषण किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में इस व्यवस्था की पृष्ठभूमि इतिहास धार्मिक आधार तथा समाजशास्त्रीय एवं आर्थिक पहलुओं को परत-दर-परत उद्घाटित किया है। जातिभेद एवं लिंगभेद जैसी दबे-कुचले वर्गों की समस्याओं के प्रति गहरी समझ के चलते उनका विश्लेषण काफी प्रासंगिक हो जाता है। उन्होंने उचित ही यह महसूस किया कि भारत के दबे-कुचले समूहों जिन्हें कई शताब्दियों से उनके मानव अधिकारों से वंचित किया गया था को अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था से मुक्ति दिलाए बगैर भारत में किसी भी तरह की राजनैतिक बौद्धिक या सांस्कृतिक प्रगति नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में उन्होंने फुले ने सामाजिक सुधार के प्रश्न पर व्यापक विमर्श किया वे एक क्रान्तिकारी चिन्तक थें उन्होंने हिन्दू समाज में आमूलचूल बदलाव और क्रान्तिकारी सुधार लाने की बात कही। वस्तुतः यही वह तथ्य है जिसके आधार पर हमें फुले अपने समकालीन अन्य समाज सुधारकों से भिन्न नजर आते हैं।

जहां अन्य सुधारक भारतीय समाज में विद्यमान कुछ कुरीतियों (जैसे सती प्रथा बाल विवाह विधवा प्रथा इत्यादि) को समाप्त कर मात्र सतही सुधार लाने पर जोर देते थें वहीं फुले ने पूरी की पूरी परम्परागत समाज व्यवस्था और उसे संचालित करने वाली विचारधारा को निरस्त करते हुए रेडिकल सामाजिक सुधार लाने की बात की। उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन के अन्तर्गत यह स्थापित किया कि राजनैतिक दासता से सामाजिक दासता कहीं अधिक खराब होती है। इसलिए उनकी पुस्तक गुलामगिरी भारतीय समाज के दबे-कुचले वर्गों की मुक्ति का घोषणापत्र कहलाती है। फुले का मानना था कि भारतीय समाज में विद्यमान गुलामगिरी का सबसे बड़ा कारण ब्राह्मणों उनके द्वारा लिखे गए तमाम नकली धर्म ग्रन्थ थें। इनके नाम पर ही उन्होंने शूद्रों-अछूतों का अमेरिका के काले गुलामों से भी ज्यादा शोषण किया है और आज भी कर रहे हैं। इसलिए आम लोगों का उन्होंने आह्वान किया कि वे सब मिलकर सर्वप्रथम ब्राह्मणों के बनावटी धर्म का निषेध करें। उन्होंने इसके लिए बाकायदा एक पर्चा तैयार किया और उसे अखबारों में छपने हेतु भेज दिया। उनके अनुसार धर्म व समाज के अलावा सरकारी सेवाओं में ब्राह्मणों का प्रभुत्व निम्न जातियों के साथ किए जाने वाले जातिभेद का एक बड़ा कारण था।

इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि विभिन्न समुदायों व जातियों के व्यक्तियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार नौकरी पर रखना चाहिए। फुले ने सुझाव दिया कि निम्न जातियों में से यथासम्भव योग्य लोगों का चयन करके उन्हें अच्छी तरह प्रशिक्षित किया जाए और फिर उन्हें कुलकर्णी पाटिल एवं अध्यापक आदि के पदों पर लगाया जाए। जातिभेद के विरुद्ध अपनी सामाजिक सुधार सम्बन्धी मुहीम को आगे बढ़ाते हुए महात्मा फुले ने 15 मई 1848 को पूना शहर की एक गरीब बस्ती में अछूत लड़के-लड़कियों के लिए एक पाठशाला की स्थापना की । 17 सितम्बर 1851 एवं 15 मार्च 1859 को उन्हांने पूना में दो और स्कूल स्थापित किए। बाद में उन्होंने पूना जिले में 18 अन्य स्कूल खोले।यह भी उल्लेखनीय है कि फुले ने हण्टर शिक्षा आयोग को शिक्षा से संबंधित स्टेटमेन्ट के रूप में एक दस्तावेज 19 अक्तूबर 1882 को पेश किया गया था। इसमें उन्होंने देश में सार्वजनिक सामान्य शिक्षा पद्धति लागू करने पर बल देते हुए कहा कि ऐसा करना जातिभेद से पीड़ित निम्न वर्ग के लोगों के लिए फायदेमन्द होगा। उन्होंने छात्रवृतियाँ व छमाही पुरस्कार देने तथा बारह वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर देने का भी सुझाव रखा। वे हमेशा अंग्रेजी शासकों के समक्ष यह मांग उठाते रहें कि वे स्त्रियों व निचले तबकों के लोगों को शिक्षा की सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें। हर गाँव में पाठशाला खोलेंमहिलाओं

का उत्पीड़न रोकेंसाहूकारों का जुल्म समाप्त करें तथा सरकारी सेवाओं में बहुजन समाज की जातियों को उनकी संख्या के अनुपात में हिस्सा दें। महात्मा फुले ने अपने समाज सुधार सम्बन्धी फ्रेमवर्क में लैंगिक भेद भाव की समस्या पर भी पूरा ध्यान दिया और स्वयं भी दलित उद्धार की तरह महिला उद्धार की दिशा में अहम योगदान दिया। उन्होंने तमाम महिला-विरोधी कुरीतियों अर्थात् सती प्रथाबालिका हत्याबाल विवाह वैधव्य प्रथाबहु विवाह बेमेल विवाह कुलीन प्रथादेवदासी प्रथा इत्यादि के विरुद्ध बातें कहीं तथा अपने भाषणों पर्चों लेखों पुस्तकों आदि के जरिए ऐसी तमाम सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लगातार प्रचार किया। जोतिराव की यह दृढ़ धारणा थी कि जब तक स्त्री को पुरुष के समान ही शिक्षित और सुसंस्कृत नहीं बनाया जाएगातब तक न तो उसकी स्थिति में सुधार होगा और न ही उससे राष्ट्र तथा समाज के महत्त्वपूर्ण कार्यों में योगदान करने की अपेक्षा की जा सकेगी।

स्त्री उद्धार की शुरूआत उन्होंने अपने घर से ही की सबसे पहले उन्होंने अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले को शिक्षा दिलाई तत्पश्चात् उन्होंने 1848 ई॰ में जब उन्होंने पूना में दक्षिण भारत की प्रथम कन्या पाठशाला की स्थापना की तो उसमें सावित्रीबाई पहली शिक्षिका बनी। जैसाकि हम जान चुके हैं उन्होंने पूना तथा इसके आस-पास के क्षेत्रों में अनेक स्कूलों की स्थापना की जिनमें से कई स्कूल उच्च तथा निम्न जातियों की बालिकाओं के लिए भी खोले गए थें।महात्मा फुले मानव अधिकारों के प्रबल समर्थक थें। इस तथ्य को कम ही लोग जानते हैं कि भारत में सभी प्रकार के स्त्रियों व पुरुषों के समान प्राकृतिक एवं मानव अधिकारों की बात सबसे पहले करने वाले व्यक्ति फुले ही थें। फुले का मानना था कि दुनिया में सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है। उन्होंने जोर देकर कहा कि यदि हम सब 'सार्वजनिक सत्यधर्म को स्वीकार करके दबे-कुचले समूहों को उनके मानव अधिकार लौटा दें तो इस दुनिया में सच्चे अर्थों से की स्थापना हो जाएगी। महात्मा फुले ने समाज सुधार के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण पहलें और भी की। तत्कालीन समाज के कुछ सम्माननीय पण्डित लोग ही भोली-भाली विधवा महिलाओं को बहला-फुसलाकर अनैतिक आचरण में धकेल देते थें।

अपनी इज्जत बचाने व अनचाहे गर्भ से निजात पाने के लिए ऐसी महिलाओं को मजबूरन भ्रूण-हत्या के लिए विवश होना पड़ता था। इस जटिल सामाजिक समस्या का हल निकालने के लिए फुले ने एक योजना बनाई कि यदि ऐसी अभागिन गर्भवती विधवाओं तथा उन जैसी अन्य महिलाओं की प्रसूति गोपनीय रूप से कराई जाए और उनके बच्चों की रक्षा की व्यवस्था की जाये तो वे जान जोखिम में डालकर गर्भपात कराने की बजाए सहज और निरापद प्रसूति के लिए आगे आयेंगीं। फलतः उन्हांने रूढ़ीवादियों के प्रतिरोध की परवाह न करते हुए 1863 में पूना में एक विधवा प्रसूति गृह की स्थापना की। उन्होंने इस प्रसूति गृह की स्थापना अपने ही घर में की उनका यह कदम विधवाओं के जीवन से जुड़ी हुई दारुण समस्या के निराकरण हेतु बहुत ही लाभकारी कदम सिद्ध हुआ। उनके द्वारा खोले गए प्रसूति गृह में अनेक गर्भवती विधवाओं ने आकर अपने बच्चों को जन्म दिया। इसमें सन् 1884 तक 35 विधवाऐं प्रसूति के लिए आईं जिनमें से 5 के बच्चे जीवित रहे और बाकि 30 के बच्चे (उन द्वारा) पहले से गर्भपात की अनुचित दवाईयाँ लिए जाने के कारण प्रभाव के समय मर गए। महात्मा फुले ने समाज सुधार के क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण पहल करते हुए विधवाओं का सिर मूड़ने की प्रथा के विरुद्ध अहम कदम उठाया उन्होंने महाराष्ट्र के नाईयों से सार्वजनिक रूप से इस कुकृत्य में शामिल न होने के लिए एक अपील जारी की उन्होंने बम्बई में नाईयों की एक सभा की जिसमें नाई समुदाय के करीब 100 सदस्य शामिल हुए। फुले के अनुरोध पर इस सभा ने सर्वसम्मति से फैसला लिया कि अब आगे से कोई भी नाई किसी भी विधवा का सिर-मुंडन नहीं करेगा।

इसी तरह उनके प्रोत्साहन तथा सक्रिय सहभागिता से पूना के गोखले बाग में 8 मार्च 1860 को पहली बार एक शैणवी ब्राह्मण विधवा युवती का उसकी जाति के ही एक विधुर के साथ विवाह सम्पन्न करवाया गया। विवाह के समय उस विधवा की आयु मात्र 18 वर्ष थी। लगभग 25 वर्ष तक महात्मा फुले समाज सुधार के क्षेत्र में अपने चिन्तन एवं प्रयासों के जरिए योगदान देते रहें। परन्तु बाद में उन्होंने महसूस किया कि इस क्षेत्र में किए जा रहे प्रयासों को एक सगंठित रूप दिया जाना चाहिए। इसी उद्देश्य से 24 सितम्बर 1873 को फुले ने पूना में अपने साथियोंअनुयायियों तथा व्यापारी सहयोगियों की मदद से सत्यशोधक समाज की स्थापना की। यह उल्लेखनीय है कि अब तक कायम किए गए तमाम संगठन उच्च जातीय नजरिये से अधिक प्रभावित रहे थें और उनकी विचारधारा और लक्ष्यों पर निम्न

जातियों के दृष्टि कोण मुद्दों तथा लक्ष्यों का प्रभाव दिखाई नहीं देता था। इसी कारण सत्यशोधक समाज की स्थापना को अपने आप में एक अनोखी और ऐतिहासिक पहल कहा जा सकता है। दरअसल में पिछले 25 वर्ष के अपने आन्दोलन तथा सतत् संघर्ष के बाद जोतिराव फुले ने अपने अनुभवों से यह समझ लिया था कि बिना संगठित हुए दबे-कुचले वर्गों के हितों हेतु वर्गो लड़ पाना पूर्णतः कठिन है। इस नए संगठन की स्थापना के पीछे महात्मा फुले का लक्ष्य ब्राह्मणवाद-जनित औपनिवेशिक व्यवस्था का विरोध करना था। अब उन्होंने महसूस किया कि समाज सुधार की लड़ाई लड़ना अकेले एक व्यक्ति के बस की बात नहीं थीबल्कि इसके लिए सामूहिक शक्ति तथा संगठित प्रयासों की जरूरत थी। सत्यशोधक समाज एक विलक्षण संगठन था क्योंकि यह अंधविश्वास समाज सुधार जन सेवा दलितोत्थान महिला उत्थान जन-शिक्षा तथा मानवाधिकारों के लिए कार्य करने की एक महत्त्वपूर्ण योजना पर आधारित था। यही नहींयह सामाजिक एकता स्थापित करने पर भी जोर देता था। इसमें शामिल हुए लोगों में ब्राह्मण थें तो शूद्र भी थे ईसाई थें तो मुसलमान भी थे। समाज के हर सदस्य को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि सारे मानव एक ही निर्मिक (निर्माता) की संताने हैंइसलिए सभी स्त्री-पुरुष मेरे भाई-बहन है और मैं उनसे इसी नाते बर्ताव करूंगा। पूजा आराधना या ध्यान-साधना करते समय मैं किसी ब्राह्मण को बिचौलिया नहीं बनाऊँगा और अन्य लोगों से भी ऐसा ही करने का अनुरोध करूँगा। सत्यशोधक समाज ने अपनी स्थापना के तुरंत बाद अपने अट्ठाईस नियमों की घोषणा की जिनका पालन करना इसके सदस्यों के लिए आवश्यक था। सत्यशोधक समाज की ओर से ब्राह्मण धर्म द्वारा समाज में प्रचलित शास्त्र विहित संस्कारों कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए अष्ट प्रकार के सरल संस्कार और विधियाँ प्रतिपादित की गई। इन विधियों की रचना स्वयं महात्मा फुले ने की। उन्होंने विधियों की जानकारी एक अलग पुस्तिका सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक में प्रकाशित की व साथ-साथ शव की गति और श्राद्ध की विधियाँ भी पुनः परिभाषित की। इस प्रकार महात्मा फुले और उसके अनुयायियों ने सत्यशोधक समाज की स्थापना कर अपने आप में एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम उठाया। इस कदम की तुलना मार्टिन लूथर द्वारा रूढिवादी कैथोलिक धर्म के विरुद्ध धर्मसुधार संबंधी ऐतिहासिक पहल से की जा सकती है। समाज के तमाम नियम कायदे और सिद्धान्त सामाजिक समानता पर जोर देते हुए सभी लोगों के शैक्षणिक और भौतिक उत्थान में सहायता करने हेतु अपने सदस्यों को प्रेरित करते थें। महात्मा जोतिराव फुले एवं सत्यशोधक समाज के अन्य सदस्यों ने बिना अधिक समय गंवाए समाज की स्थापना के तुरंत बाद इसके प्रचार एवं प्रसार हेतु कार्य करना शुरू कर दिया।

फुले ने अपने समक्ष मौजूद तमाम चुनैतियों को देखते हुए अपना काम बिल्कुल जमीनी स्तर से करना आरंभ किया। उन्होंने जनता में समाज के प्रचार के लिए कई प्रचार पुस्तिकाएँ लिखी जो सभी मराठी भाषा में प्रकाशित की गई ताकि उन्हें आम एवं निचले वर्गों के लोग उन्हें आसानी से समझ सकें। फुले के जीवनकाल में इस संगठन का प्रसार मुख्यतः बम्बईपूना व सातारा जैसे जिलों के कई कस्बों और गाँवों में हुआ। इसके अनेक सदस्य फुले की अपनी जाति अर्थात माली से संबंधित थे। इसके अलावा चूंकि फुले ने अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में अस्पृश्यों के बीच में भी काम किया थाइसलिए पूना तथा आस-पास क्षेत्रों में महार एवं मातंग काफी संख्या में समाज के दृढ़ समर्थक एवं अनुयायी बन गए। यद्यपि व्यावसायिक वर्गों में फुले की पहचान वाले कुछ ठेकेदार अथवा व्यापारी भी समाज से अवश्य जुड़े। ऐसे लोगों में बम्बई से संबंधित कुछ तेलगू व्यापारी और नासिक तथा ठाणे से संबंधित कुछ व्यापारी शामिल थें। सत्यशोधक समाज के आरंभिक दौर में बने कुछ स्थायी सदस्यों में से एक थें नारायण लोखांडे (1848-1907) जो कि फुले तथा भालेकर के साथ मिल कर प्रचार कार्य करते थें। एक और मुख्य नेता थें रमैय्या वैंकेया अय्यवरू जो कि तेलगू माली समुदाय से संबंधित थे। उसने बम्बई में समाज की शाखा स्थापित की और एक अन्य तेलगू ठेकेदार व्यन्कू बालोजी कालेवर की सहायता से समाज के लिए एक प्रिंटिंग प्रैस को खरीदा। विश्राम रामाजी घोले (1838-1900) नामक एक और नेताजोकि 1875-1876 में सत्यशोधक समाज के अध्यक्ष भी बनेने भी काफी सामाजिक कार्य किया। समाज से महत्त्वपूर्ण रूप से जुड़े लगभग 67 सक्रिय सदस्य और थें।

सत्यशोधक समाज ने अपना प्रचार और प्रसार के शुरूआती दौर में पूना और उसके आस-पास के रहने वाले निम्न जातिय लोगों में काम करने पर अधिक ध्यान दिया । मुख्य जोर इस बात पर दिया जाता था कि उन लोगों की परम्परागत सोच को बदलते हुए

उनमें नई सामाजिक एवं धार्मिक चेतना उत्पन्न की जा सके ताकि वे ब्राह्मण-धर्म एवं ब्राह्मणवादी विचारधारा से अलग हो सकें। समाज की रिपोर्टों से यह पता चलता है कि प्रचार कार्य किस शिद्दत से किया जा रहा था। फुले तथा समाज के अन्य प्रबुद्ध नेताओं द्वारा रचित साहित्य पूना के आस-पास के गाँवों में मुफ्त में वितरित किया जाता था। इन पुस्तकों में मुख्य थीः फुले कृत गुलामगिरी पुरोहितशाही का भंड़ाफोड़ पँवाड़ा छत्रपति शिवाजी राजा भौंसले का इत्यादि। सत्यशोधक साहित्य का वितरण न केवल पूना अपितु वहाँ से 60 मील की दूरी पर स्थित अहमदनगर जैसे शहरों में भी किया गया। सत्यशोधक मिशनरियों का प्रचार कार्य प्रोटेस्टेंट मिशनरियों की रणनीतियों से भी प्रभावित नजर आता था। उदाहरणतः सत्यधर्म संबंधी फुले के विचार में मुख्यतः इस बात पर बल दिया जाता था कि लोग आँख मूंदकर धार्मिक पोथियों अथवा धर्मगुरुओं की बातों पर भरोसा करने की बजाए स्वविवेक पर अधिक भरोसा करें। सत्यशोधक समाज की आरंभिक गतिविधियों में इसकी निम्न वर्गों में शिक्षा-प्रसार की परियोजनाओं का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसका उद्देश्य जैसा कि पहले बतलाया जा चुका हैन केवल निचले वर्गों में जागृति लाना था अपितु उन्हें ब्राह्मणों के जाल से निकालना तथा उनके ही समान स्तर पर लाने हेतु उन्हें सशक्त करना था।

समाज की सोच यह थी कि ब्रिटिश राज द्वारा खोले गए स्कूलों तथा सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई नौकरियों जैसे अवसरों अवसरों तक लोगों की पहुँच कायम की जाए। समाज के नेताओं को यह भी उम्मीद थी कि शिक्षा का किसानों व निम्न वर्गों में व्यापक प्रसार करने से उनकी और भी बहुत सारी समस्याओं का अंत हो सकता है। इन समस्याओं में मुख्य थी शराब पीनाआदतन कर्ज लेते रहनाअच्छी फसल होने पर काम न करना तमाशे देखनाजुआ खेलना झगड़े करना मुकदमे बाजी में पड़े रहना धूम्रपान करना तथा गप्पे लड़ाना इत्यादि। सत्यशोधक समाज की रिपोर्टों के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि इसके नेताओं ने बिल्कुल आरंभिक दौर से ही सकारात्मक विभेद संबंधी नीति की पैरवी भी ताकि शैक्षणिक संस्थाओं व नौकरियों में निम्न जातिय समुदायों हेतु आगे बढ़ने की खातिर निश्चित हिस्सा प्रदान किया जा सके। उदाहरणतः बम्बई प्रांत के लोक शिक्षा आयुक्त मि॰ चैटफील्ड के समक्ष समाज द्वारा एक अर्जी लगाई गई जिसमें यह प्रार्थना की गई कि प्रान्त के सरकारी स्कूलों में मुफ्त में अध्ययन हेतु उपलब्ध कराई गई 1000 सीटों में से कम से कम 5 सीटें शूद्र जाति के गरीब बच्चों हेतु सुरक्षित की जाए। समाज की यह अर्जी मान ली गई। सत्यशोधक समाज ने शूद्र-अतिशूद्र छात्रों में भाषण एवं लेखन प्रतिभा को निखारने हेतु निबंध लेखन एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताओं जैसी साहित्यिक गतिविधियों का भी सूत्रपात किया। 1 जून 1876 के अंत में ज्ञानोदय नामक स्थानीय समाचार पत्र ने यह रिपोर्ट दी कि 22 मई को समाज ने ऐसी ही एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जिसके निबन्ध लेखन एवं भाषण देने हेतु मूर्तिपूजा तथा जाति प्रथा जैसे विषय रखे गए थें। 1877 में ऐसी ही एक और प्रतियोगिता समाज द्वारा कराई गई जिसके निबंध लेखन प्रतियोगिता का विषय था हिन्दुस्तान में अस्पृश्यों की दुर्दशा जबकि भाषण प्रतियोगिता का विषय था हिन्दुस्तान में पड़ रहे अकालों में शूद्र लोगों के ही सबसे पहले भूखे मरने की समस्या के कारण और इस समस्या के उपाय। सत्यशोधक समाज ने शैक्षणिक और साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ कुछ ऐसी धार्मिक और आनुष्ठानिक परियोजनाऐं भी आगे बढ़ाई जो अपने आप में काफी अनोखी थी।

दर असल जोतिराव फुले हिन्दू धर्म का वि-ब्राह्मणीकरण करना चाहते थें। वे सत्य तथा समता पर आधारित एक सार्वभौमिक धर्म की तलाश मे थें। इसलिए समाज द्वारा इस बात पर काफी जोर दिया गया कि तमाम तरह की धार्मिक और आनुष्ठानिक गतिविधियाँ विशेषकर विवाह सम्बन्धी अनुष्ठान ब्राह्मण-पुरोहितों की सहायता के बगैर कराए जाएं और इन्हें संस्कृत भाषा की बजाए आम लोगों में समझी जाने वाली मराठी भाषा में ही संपन्न कराए जाए। फुले नास्तिक नही थेंअपितु एक सच्चे आस्तिक थें उनका ईश्वर या निर्माता सर्वव्यापी और सर्वसुलभ था उन्होंने अपनी सत्यधर्म की परिकल्पना में स्वर्ग-नरक अवतरवाद नियतिवाद और रहस्यमयी धार्मिक अवधारणाओं को कोई स्थान नहीं दिया। फुले ने लोक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण धार्मिक पहलुओं को सत्यशोधक समाज की विचारधारा एवं लक्ष्यों के आलोक में पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया। इस दिशा में उन्होंने 1887 में सत्यशोधक समाज के लिए उपयुक्त मंगलगाथाएँ तथा सभी पूजा-विधि नामक एक रचना लिखी। फुले ने लोक प्रतीकों को सत्यशोधक समाज की नई धामिक संस्कृति का

आधार बनाया। उदाहरणतः समाज के नए सदस्यों को सदस्यता हासिल करते समय जो महत्त्वपूर्ण शपथ दिलाई जाती थी उसमें खंडोवा राजा बलि तथा जोतिराव के नामों को साक्षी मानकर उन्हें समाज में प्रवेश दिलाया जाता था। उन्होने गणेश चतुर्थी के त्यौहार को भी राजा बलि से जोड़ते हुए बलि प्रतिपदा के नाम से मनाने का चलन किया। धार्मिक रीति-रिवाजों एवं पूजा-पद्धतियों की पुनर्व्याख्या करने के साथ-साथ महात्मा फुले ने धार्मिक-सामाजिक अनुष्ठानों में भी बदलाव करने के प्रयास किए। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि इन अनुष्ठानों में विवाह सबसे महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान था। सत्यशोधक समाज की आरंभिक रिपोर्टों में ऐसे कई विवाहों का विस्तृत रूप से उल्लेख आता है जो कि फुले द्वारा सत्यशोधक रीति से ब्राह्मण-पुरोहितों की सहायता के बगैर सम्पन्न करवाए गए। इनमें से बारह विवाह पूना में करवाए गए जबकि एक विवाह भीलर नामक पूना जिले के एक गाँव में करवाया गया। फुले ने स्वयं पूना में कराए गए दो सत्यशोधक विवाहों के विस्तृत विवरण लिखे जो कि सत्यदीपिका नामक स्थानीय समाचारपत्र में प्रकाशित भी हुए। उक्त विवरणों से यह जाहिर होता है कि इन विवाहों को सम्पन्न कराने में कितनी बाधाएँ आई संभवतः इसी कारण सत्यशोधक रीति से कराए जाने वाले विवाहों का चलन महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर नहीं हो सका। हालांकि फुले के अनुयायियों ने बाद में भी विवाह करवाए परंतु इन बातों का यह आशय नहीं निकलना चाहिए कि सत्यशोधक समाज जिन क्रांतिकारी उद्देश्यों को हासिल करने के लिए स्थापित किया गया था उन्हें पाने नाकाम होने लगा था। आरंभिक दौर में किसी भी क्रांतिकारी संगठन के समक्ष जो भारी चुनौतियां उत्पन्न आती है उनके मद्देनजर कभी-कभी ऐसे संगठनों को व्यावहारिक नीति अपनाते हुए कुछ रणनीतिक समझौते करने पड़ते हैं।

महात्मा फुले के नेतृत्व में सत्यशोधक समाज ने अपनी गतिविधियों के दायरे में शैक्षणिक प्रसार तथा धर्म सुधार के अलावा ग्रामीण लोगों विशेषकर कृषकोंकी समस्याओं और उनके मुद्दों पर भी ध्यान केन्द्रित किया। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि फुले स्वयं फूलमाली जाति से संबंधित थें जो कि एक कृषक समुदाय था। 1876 के बाद फुले और उनके साथियों ने सत्यशोधक समाज की गतिविधियों को पूना अहमद नगर ठाणे आदि जिलों के ग्रामीण-क्षेत्रों में फैलाने पर ध्यान दिया अपने जीवन के आखिरी दशक में उन्होंने मराठा अथवा कुनबी जातियों के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान व्यापक महाराष्ट्रीय कृषक समाज पर ध्यान केंद्रित किया और सत्यशोधक समाज के संगठन एवं आंदोलन को शेतकारी कृषकों के मुद्दों की ओर मोड़ा। वे अपने जीवन के इस आखिरी दशक में व्यापक वर्गीय नजरिये से अपने आन्दोलन को देख रहे थे। इसलिए उन दिनों किसानों के साथ-साथ उनका बराबर ध्यान मजदूरों पर भी गया । विशेषकर वे बम्बई मिल मजदूरों की समस्याओं में भी रूचि ले रहे थें। ग्रामीण कृषकों के मुद्दों के लिए फुले ने सत्यशोधक समाज का पहला बड़ा संघर्ष पूना से 60 मील उत्तर में स्थित जुनार ताल्लुका में किया। असल में इस स्थान पर किसानों के लिए काम करने का आधार भाऊ कोंडजी पाटिल नामक एक कुनबी किसान नेता ने तैयार किया था जोकि फुले के संपर्क में आने के बाद 1882 में सत्यशोधक समाज के सदस्य बने थें।

फुले व पाटिल ने यहाँ किसानों को ब्राह्मण कुलकर्णियों और साहुकारों के बहिष्कार हेतु आन्दोलन करने के लिए तैयार किया। 1882 से 1883 के दौरान फुले ने ऐसे अनेक भाषणों की श्रृंखला का लेखन किया जो कि इस तालुका में बुलाई गई किसान सभाओं में दिए गए। बाद में उन्होंने इन भाषणों को पाँच अध्यायों में संकलित कर एक पुस्तक का रूप दिया। इस पुस्तक का नाम उन्होंने 1884 में महात्मा फुले और भाऊजी कोंडजी पाटिल के नेतृत्व में सत्यशोधक समाज के नेताओं ने जुन्नार कस्बे और उसके आस-पास के गाँवों में लगातार किसान सभाएं बुलाई। फलस्वरूप जुन्नार के लगभग 40 किसान परिवारों ने ब्राह्मण पुरोहितों के बगैर विवाह और अन्य धार्मिक अनुष्ठान संपन्न कराने का निर्णय लिया। हकीकत में वहां लगभग 300 विवाह सत्यशोधक रीति से संपन्न कराए गए । जुन्नार किसान आंदोलन 19वीं शताब्दी के आठवें दशक के अंत तक आते-आते अपने चरम-बिंदु पर पहुँच गया। ओटूर के एक किसान बालाजी केशवजी पाटिल ने जब अपनी बेटी का विवाह ब्राह्मणों की सहायता के बगैर सत्यशोधक रीति से करा दिया तो स्थानीय ब्राह्मण इसके विरुद्ध अदालत में चले गए। फुले के सहयोग से पाटिल ने यह केस बम्बई उच्च न्यायालय तक लड़ा आखिर में 1888 में बम्बई उच्च न्यायालय ने ब्राह्मणों द्वारा किए गए उपरोक्त मुकद्दमें का फैसला फुले व पाटिल के हक में दे दिया। जुन्नार किसान आंदोलन की सफलता

के बाद फुले सत्यशोधक समाज के मंच से अन्य स्थानों के किसानों की आवाज भी बुलंद करते रहें। पूना के करदहा नामक गाँव में जब एक ऋणग्रस्त कुनबी किसान के खिलाफ साहूकार ने केस दायर कर अदालत से उसकी जमीन की डिक्री हासिल कर ली तो गाँव के सभी किसानों में इसके कारण रोष व्याप्त हो गया।

फुले उनकी मदद के लिए आगे आए और साहूकारों और सूदखोरों के बहिष्कार तथा उनके कर्ज के दस्तावेजों को छीनने के लिए उनका आह्वान किया अंततः सरकार से आश्वासन मिलने पर फुले ने इस आंदोलन को स्थागित कर दिया और बाद किसानों की समस्याओं का सरकार द्वारा निदान किया गया।महात्मा फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना कर जिस संगठित सामाजिक आंदोलन की नींव डाली थीवह फुले की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में कई धाराओं में विभक्त होकर विकसित हुआ आंदोलन की इन धाराओं में मुख्य तौर पर गैर-ब्राह्मण आंदोलनकिसान आंदोलन एवं दलित आंदोलन मुख्य थीं। फुले की मृत्यु (1890) के बाद उनका आंदोलन जिन नेताओं के हाथ में चला गया उनमें से अधिकांश गैर-ब्राह्मण पृष्ठभूमि से उठकर आए नेता शामिल थें। इसी दौर में ज्यादातर प्रमुख गैर-ब्राह्मण जातियों के अपने-अपने जातिय संगठन बने। ज्यादातर विद्वानों और इतिहासकारों ने इन गैर-ब्राह्मण संगठनों के उभार को उनके संस्कृतिकरण संबंधी प्रयासों के रूप में देखा है। लेकिन इस व्याख्या से इन संगठनों की छवि रूढ़िवादी सुधार आंदोलनों के रूप में बनती है। लेकिन गैर-ब्राह्मण जातियों के लगभग सभी संगठन और उनके नेता सत्यशोधक विचारधारा से प्रभावित रहे थें और असल में तो अधिकांश मामलों में सत्यशोधक समाज के कार्यकर्त्ताओं ने ही इन जातियों के सम्मेलनों को बुलाने तथा उन्हें संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी ।

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक आते-आते महाराष्ट्र में सत्यशोधक आंदोलन से उभरकर आया गैर-ब्राह्मण आंदोलन राजनीतिक शक्ल इख्तियार करने लगा था। 1919 में लागू किए गए मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के जरिए सरकार द्वारा भारतीयों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व संबंधी अवसर उपलब्ध कराए गए। इन अवसरों का लाभ उठाने के लिए बम्बई प्रान्त के गैर-ब्राह्मण राजनीतिक रूप में एकीकृत होने लगे। 1920 के दशक में गैर-ब्राह्मणों की राजनीति को बढ़ावा देने में बेशक अंग्रेजों ने भी एक खास भूमिका अदा की जो उस दौर में गांधीवादी असहयोग की चुनौती का मुकाबला गैर-ब्राह्मण दल की सहायता से करना चाहती थी। 1920 के दशक में गैर-ब्राह्मणों को राजनीतिक रूप से संगठित करने में सत्यशोधक नेतृत्व तथा कोल्हापुर के मराठा राजा छत्रपति साहूजी महाराज ने महत्त्वपूर्ण नेटवर्क प्रदान किया। आरंभिक दौर में उन्होंने पिछड़े वर्ग का नामांकरण आगे बढ़ाया और सत्यशोधक बनाम वर्णाश्रमवादी के आधार पर अपनी राजनीति की नींव रखी।

इसी तरह 1923 के चुनाव में भी उसने अपनी यह स्थिति बरकरार रखी जबकि 1926 के चुनाव में दल ने 11 सीटें जीती विधान परिषद् में प्रवेश करने के बाद गैर-ब्राह्मण दल ने किसानों से संबंधित अनेक मुद्दों को उठाया। इसके कुछ सदस्यों ने सामाजिक सुधार से संबंधित कुछ मुद्दे भी उठाए। 1923 में गैर-ब्राह्मण दल के एक नेता डी॰ डी॰ घोलक ने 'महार वतनदारी उन्मूलन बिल पेश किया परंतु बाद में सरकारी विरोध के कारण इसे वापस लेना पड़ा। हालांकि 1927 में गैर-ब्राह्मण दल विधान सभा में एक प्रस्ताव पारित करवाने में सफल रहा जिसमें न्यूनतम 50 प्रतिशत भर्तियाँ पिछड़े वर्गों (अर्थात् गैर-ब्राह्मणों एवं अस्पृश्यों) से की जाने की मांग की गई थी जिस प्रकार गैर-ब्राह्मण आंदोलन एवं राजनीति को सत्यशोधक समाज की ऐतिहासिक विरासत कहा जा सकता हैउसी तरह महाराष्ट्र में सामने आया किसान आंदोलन भी काफी हद तक महात्मा फुले द्वारा सींचे गए सत्यशोधक समाज के आंदोलन का परिणाम था। हालांकि इस संदर्भ में कई विद्वानों का यह विचार है कि गैर-ब्राह्मण आंदोलन द्वारा जो तथाकथित किसान राजनीति आगे बढ़ाई गई थीवह असल में ग्रामीण भू-स्वामी प्रभुत्वशाली जातियों व धनी किसानों की राजनीति थी। वस्तुतः 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा बदले गए भूमि कानूनों और भूमि संबंधों के परिणामस्वरूप ब्राह्मण कुलकर्णी महाराष्ट्र के देहातों में सर्वाधिक शक्तिशाली समूह के रूप में उभर रहे थें। इसलिए उन हालातों में कुनबी माली धनगर आदि कृषक जातियों की स्थिति वास्तव में कोई प्रभुत्वशाली जातियों जैसी नहीं रह गई थी और वे आर्थिक रूप से लगभग उसी धरातल पर खड़े थेंजिस धरातल पर दलित वर्ग के लोग खड़े थें। इसके अलावा महाराष्ट्र में

शक्तिशाली चितपावन ब्राह्मणों द्वारा कुनबी माली धनगरगवली आदि जातियों को भी शूद्र कह कर अपमानित किया जाता था और स्वयं जोतिराव फुले को इसी प्रकार का अपमान ब्राह्मणों के हाथों अपनी युवावस्था में झेलना पड़ा था। असल में गैर-ब्राह्मण नेताओं द्वारा जिस किसान राजनीति को आगे बढ़ाया गया वह धनी किसानों या जमींदारों की राजनीति नहीं थी अपितु इस राजनीति की प्रकृति काफी हद तक महात्मा फुले द्वारा प्रतिपादित बहुजन विचारधारा से प्रभावित नजर आती थी।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में इस राजनीति के महत्त्वपूर्ण नेता के रूप में जो व्यक्ति उभरे उनका नाम मुकुंदराव पाटिल था जो फुले के महत्त्वपूर्ण सहयोगी कृष्णराव वालंकर के पुत्र थें। महाराष्ट्र के देहातों में किसान आंदोलन को खड़ा करने में पाटिल जैसे नेताओं ने कई ऐसी तकनीकों का सहारा लिया जो कि विशुद्ध रूप से सत्यशोधक तकनीकें कही जा सकती हैं। इन तकनीकों में सबसे अहम थीं सत्यशोधक तमाशें जिनके जरिए आरंभिक दौर में सातारा जैसे जिलों तथा बाद में पूरे महाराष्ट्र में किसानों के साथ संवाद कायम किया गया। कोल्हापुर के साहूजी महाराज जैसे गैर-ब्राह्मण अभिजात्यों और नेताओं ने इस प्रकार की तमाशा मंडलियों को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार के तमाशों के माध्यम से प्रायः सत्यशोधक कलाकारों द्वारा यह दर्शाया जाता था कि किस प्रकार प्रभुत्वशाली ब्राह्मण और साहूकार भोले-भाले किसानों का दमन एवं शोषण करते हैं ।55 1920 के दशक में सातारा जिला सत्यशोधक समाज तथा गैर-ब्राह्मण दल के मार्गदर्शन में किसान आंदोलन के एक बड़े केन्द्र के रूप में उभरा। असल में 1920-1921 में इस जिले में ब्राह्मण तथा मारवाड़ी-गूजर साहूकारों तथा व्यापारियों के विरुद्ध एक किसान विद्रोह उत्पन्न हुआ। इस विद्रोह में कुनबी धनगर वडार रमोसी तथा महार जातियों के किसानों ने भाग लिया। इस विद्रोह का कारण यह था कि इस क्षेत्र के धीरे-धीरे ब्राह्मण व मारवाड़ी-गुजर साहूकारों ने किसानों को कर्ज के जाल में फंसाकर उनकी जमीनों पर कब्जा कर लिया था।

जिले के पाँच ताल्लुकों के तीस गाँव इस विद्रोह की चपेट में आए और पड़ोसी शोलापुर जैसे जिले भी कुछ हद तक विद्रोह से प्रभावित रहें। अनेक गाँवों में ब्राह्मण भू स्वामियों का काश्तकारों द्वारा बहिष्कार कर दिया गया जिनके कारण उस वर्ष उनकी जमीन पर कोई उपज नहीं ली जा सकी। जिला कलेक्टर ई॰ ई॰ मोयसे ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि असल में इस विद्रोह के कारण आर्थिक अधिक थें क्योंकि उनके अनुसार ग्रामीणों को यह हिंसा ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं अपितु भू स्वामियों और साहूकारों के खिलाफ थी। अंग्रेजी सरकार ने एक तरफ राष्ट्रवादी ब्राह्मणों को संतुष्ट करने के लिए विद्रोहियों को दबा दिया वहीं बाद में कुछ गैर-ब्राह्मण नेताओं से स्थिति को काबू में करने की खातिर समझौता कर लिया। महाराष्ट्र में किसान आंदोलन ने एक नया आयाम उस समय ग्रहण किया जब अगस्त 1927 में बम्बई विधानसभा में बम्बई सरकार द्वारा स्मॉल होलडिंग्स बिल पेश किया गया। लेकिन इस बिल का गैर-ब्राह्मण किसान नेताओं ने विरोध किया और यह कहा कि इस बिल के चलते किसान भूमिहीन होकर पूंजीपतियों के शिकंजे में फंस जाएंगें। हालांकि इस बिल का विरोध राष्ट्रवादियों ने भी कियापरंतु गैर-ब्राह्मण नेता तो सरकार के इस प्रस्तावित कदम के खिलाफ बाकायदा लामबद्ध हो गए। ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने भी वल्लभभाई पटेल को इस समस्या का हल निकालने हेतु भेजा जिसने एक भूमि लीग की स्थापना की। इस प्रकार अपने भूमि विधेयक के प्रति उभरे चौतरफा विरोध को देखते हुए सरकार को अपने कदम वापस खींचने पड़े। जहाँ तक गैर-ब्राह्मण एवं किसान नेताओं का संबंध है एक समय ब्राह्मणवादी शोषण-तंत्र के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार की सहायता हासिल करने की उम्मीद में शुरू किया उनका आंदोलन अब इस हद तक पहुँच चुका था कि वह अंग्रेजी औपनिवेशिक सरकार को खुलकर चुनौती देने लगा था। सत्यशोधक समाज के आंदोलन की तीसरी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासत महाराष्ट्र में उभरकर आया दलित आंदोलन था।

फुले ने अपनी विचारधारा में ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था का जो आलोचनात्मक विश्लेषण किया था उसमें अस्पृश्यों के साथ किए जा रहे जातिभेद को भी एक महत्त्वपूर्ण आधार बनाया था। इसलिए इसमें कोई शक नहीं है कि महाराष्ट्र में 19वीं शताब्दी के अंत तथा 20वीं शताब्दी के आरंभ में सामने आए लगभग सभी दलित बुद्धिजीवियों और नेताओं पर सत्यशोधक समाज की विचारधारा का व्यापक प्रभाव रहा। स्वयं डॉ॰ अम्बेडकर ने खुद पर सत्यशोधक विचारधारा के प्रभाव को स्वीकार किया था महाराष्ट्र में दलित चेतना उत्पन्न करने वाले प्रारंभिक नेताओं में से एक गोपाल बाबा वलंगकर थें जो कि रत्नगिरि जिले के एक पेंशनयाफ्ता महार सिपाही थें और

जिसने प्रथम महार समाचार पत्र की स्थापना की थी। एक और रिटायर्ड सैनिक शिवराम जनबा कांबले ने पूना में 1903-1930 के दौरान बहुत-सारा सामाजिक कार्य किया था जिनमें सम्मेलन बुलानारात्रि स्कूल चलानामंदिरों व छात्रावासों में प्रवेश हेतु आंदोलन करनायाचिकाएं भेजना आदि कार्य शामिल थें।

1890 में गोपाल बाबा वलंगकर ने शंकराचार्य और अन्य हिन्दू नेताओं से यह याचिका की कि वे अस्पृश्यों के तमाम कष्टों और पीड़ाओं को समाप्त करने के कदम उठाए क्योंकि इन कष्टों के कारण उनमें हिन्दू धर्म के प्रति रोष की भावना उभर रही है। महाराष्ट्र में जो दलित आंदोलन उभर रहा था उसकी विचारधारा पर भी सत्यशोधक समाज की बहुजन विचारधारा का असर देखा जा सकता था। उदाहरणत जिस प्रकार फुले शूद्रों-अतिशूद्रों को भारत के मूलनिवासी मानते थेंउसी प्रकार दलित-महार भी स्वयं को आर्यों से पहले भारत में रहने वाले मूलनिवासी कहते थें। सत्यशोधक समाज के आंदोलन से प्रेरित होकर महाराष्ट्र के दलित नेताओं ने अपनी जो मांगें आगे बढ़ाईउनमें से दो मांगें प्रमुख थी।

प्रथम आम जन के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना और द्वितीय ब्राह्मणों के आनुष्ठानिक अधिकारों और धार्मिक शक्ति में कटौती करना। शिवराम कांबले ने 1910 में इस संदर्भ में ब्रिटिश सरकार को यह याचिका प्रस्तुत की थी कि दलितों को बराबरी से देखा जाना मानव अधिकारों से संबंधित एक मुद्दा है। उनके इस स्वर में महात्मा फुले की उस मांग का प्रभाव स्पष्ट तौर पर महसूस किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत उन्होंने सभी प्रकार के स्त्रियों और पुरुषों को बराबरी के आधार पर मानव अधिकार दिलाने की बात कही थी। सत्यशोधक समाज की बहुजन विचारधारा से प्रभावित होने के कारण ही अनेक दलित नेता गैर-ब्राह्मण आन्दोलन में इस उम्मीद से शिरकत करते रहें कि व्यापक बहुजन समाज के सदस्यों के रूप में उनको भी लोकतांत्रिक अधिकार अन्य पिछड़े वर्गों के साथ हासिल होंगें। दलित आंदोलन को बेशक गैर-ब्राह्मण आंदोलन से जुड़े कई नेताओं से सहायता भी मिलती रही। उदाहरण वी॰ आर॰ शिंदे नामक मराठा सुधारक ने डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन की स्थापना कर दलित वर्गों में शिक्षा के प्रसार हेतु प्रयास किए। इसी तरह कोल्हापुर के साहूजी महाराज और बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड़ जैसे गैर-ब्राह्मण राजाओं ने दलितों को शैक्षणिक और राजनीतिक रूप से आगे बढ़ाने में काफी सहयोग दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि सत्यशोधक समाज से प्रेरित रहे गैर-ब्राह्मण नेताओं ने दलित वर्ग के मुद्दों को सामने लाने के लिए अपने समाचारपत्रों का भी इस्तेमाल किया। इनमें से सबसे पहला समाचार पत्र दीनबंधु था जिसे खुद सत्यशोधक समाज के नेताओं द्वारा महात्मा फुले की प्रेरणा से 1877 में आरंभ किया गया था। बाद के दौर में दीन मित्र जैसे गैर-ब्राह्मण समाचार पत्रों ने भी दलितों के मुद्दों को प्रमुखता से जगह दी। जाता रहा चाहे वह दलित संगठनों के मूलनिवासी संबंधी दावों की बात हो या फिर बहुजन समाज पार्टी के बहुजन समाज के राज संबंधी विचार की बात।

अन्त में हम संक्षेप में कह सकते हैं कि महात्मा फुले ने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक तीन दशकों में अपने व्यक्तिगत प्रयासों तथा बाद के दो दशकों में सत्यशोधक समाज की स्थापना कर संगठित प्रयासों के जरिए महाराष्ट्र में एक जुझारू समाज सुधार आन्दोलन का सूत्रपात किया। यह आन्दोलन उस दौर में भारत का सम्भवतः सबसे अधिक प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी रूझान रखने वाला आन्दोलन था जो हिन्दू समाज के दबे-कुचले वर्गों एवं महिलाओं के तमाम मानव अधिकारों की बाहली पर जोर देता था तथा उनकी मुक्ति हेतु स्थापित ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था के विरुद्ध एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति का आह्वान करता था। फुले व सत्यशोधक समाज के नेतृत्त्व की विचारधारा परम्परागत समाज व्यवस्थाउसकी विचारधारासंस्थाओं व परम्पराओं को पूर्णतः खारिज करती थी। ऐसे जुझारू आन्दोलन का स्वभाविक तौर पर महाराष्ट्र की राजनीतिक-सामाजिक जमीन पर गहरा पड़ा। इसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र के गैर-ब्राह्मणों दबे-कुचले वर्गों किसानों तथा महिलाओं के मुद्दों को महत्त्व मिला और इन समूहों के उत्थान हेतु बहुत सारा कार्य किया गया। फुले की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र में उभरा कर आए तीन प्रमुख आन्दोलनों अर्थात् गैर-ब्राह्मण आन्दोलन किसान आन्दोलन तथा दलित आन्दोलन पर सत्यशोधक समाज की विचारधारा की गहरी छाप दिखाई देती थी। इन आन्दोलनों ने न केवल महाराष्ट्र अपितु

पूरे भारतवर्ष में बड़े राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाने निर्णायक भूमिका अदा की। इस प्रकार महात्मा फुले और उनके सत्यशोधक समाज की भूमिका को ऐतिहासिक कही जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

- ताराचन्द, भारतीय स्वतंन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1964, खण्ड
- बिपन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2011,
- निभाई सघन बोस, द इण्डियन अवेकनिंग एण्ड बंगाल, कलकत्ता, 1960,
- गेल ओमवेत, कल्चरल रिवोल्ट इन ए कॉलोनियल सोसायटीः नॉन ब्राह्मण मूवमेंट इन वेस्ट्रन इण्डिया, साइंटिफिक सोशल एजुकेशन ट्रस्ट, बम्बई, 1976,
- हरि नरके, महात्मा फुले: साहित्य और विचार, महात्मा फुले चरित्र साधने समिति, बम्बई, 1993
- बृजलाल वर्मा, महात्मा ज्योतिराव फुले, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001,
- रोजालिंड ओ हैनलॉन, कॉस्ट, कनफ्लिक्ट एण्ड आइडियोलोजी, परमानेन्ट ब्लैक, रानीखेत, 2010,
- योगमाया, महात्मा जोतीराव फुले: दर्शन एवं चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2004,
- योगमाया, महात्मा जोतिराव फुले: दर्शन एवं चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2004,
- धनंजय कीर, महात्मा जोतिराव फुले: फादर ऑफ द इंडियन सोशल रिवोल्यूशन, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 2013 (तृतीय संस्करण), हेत सिंह वघेला, भारतीय संस्कृति का विकास,
- एल॰ जी॰ मेश्राम 'विमलकीर्ति (सं॰), महात्मा जोतिराव फुले रचनावली, खण्ड
- सत्य दीपिका (मराठी), जून 1874, उद्धृत: रोजालिंड ओ हैनलान, पूर्व उद्धृत,
- डेविड जी॰ मैंडलबाम, सोसायटी इन इण्डिया, खण्ड कैलीफोर्निया युनिवर्सिटी प्रैस, बर्कले, 1970,
- रवीन्द्र कुमार, वेस्टर्न इंडिया इन द नाइटिंन्थ सेंचुरी, रोटलैज पब्लिकेशन, लंदन, 1968,
- एस॰ के॰ चहल, दलित्स पैट्रनाइज्ड: इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड अनटचेबल्स ऑफ इंडिया (1921-1947), शुभी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

सूचना, संचार प्रौद्योगिकी एवं महिला सशक्तिकरण : कौशाम्बी जिले के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

प्रिया यादव
शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग, एल.बी.एस.पी.जी. कॉलेज गोंडा संबद्ध- डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।
प्रो० (डॉ०) शशि बाला
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष- समाजशास्त्र विभाग, एल.बी.एस.पी.जी. कॉलेज गोंडा संबद्ध- डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

सारांश
प्रस्तुत शोध-पत्र उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी जिले के विशेष संदर्भ में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) और महिला सशक्तिकरण के अंतर्संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। कौशाम्बी जिला, जहाँ 92% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण है और महिला साक्षरता दर मात्र 48.56% है, डिजिटल समावेशन के मार्ग में एक चुनौतीपूर्ण परिदृश्य प्रस्तुत करता है। ICRIER SIDE रिपोर्ट 2025 के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की पहुँच अत्यंत सीमित है, जहाँ पुरुष उपयोगकर्ताओं की तुलना में महिला उपयोगकर्ताओं की संख्या एक-तिहाई (10-20%) ही है। यह व्यापक डिजिटल लैंगिक अंतराल जिले के सामाजिक-आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। अध्ययन के अंतर्गत यह पाया गया है कि यद्यपि प्रशासन द्वारा 451 ग्राम पंचायतों में डिजिटल लाइब्रेरी की स्थापना जैसी पहलें सराहनीय हैं, किंतु निम्न साक्षरता, पितृसत्तात्मक सामाजिक मानदंड और डिजिटल कौशल के अभाव के कारण महिलाएँ इन सुविधाओं का समुचित लाभ नहीं उठा पा रही हैं। शोध में रेखांकित किया गया है कि स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन भुगतान के कुछ सफल उदाहरण सामने आए हैं, परंतु इनका दायरा अभी भी बहुत सीमित है।
यह शोध द्वितीयक स्रोतों—जनगणना 2011, NFHS-5, ICRIER रिपोर्ट और भारतनेट परियोजना—पर आधारित है। पेपर के माध्यम से ICT द्वारा व्यक्तिगत, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्षतः, यह अध्ययन कौशाम्बी में महिलाओं की स्थिति सुधारने हेतु लैंगिक-संवेदनशील डिजिटल नीतियों, महिला-केंद्रित साक्षरता अभियानों और स्वयं सहायता समूहों के साथ ICT के प्रभावी एकीकरण की पुरजोर सिफारिश करता है।
मुख्य शब्द: ICT, महिला सशक्तिकरण, कौशाम्बी, डिजिटल विभाजन, लैंगिक असमानता, डिजिटल साक्षरता, स्वयं सहायता समूह।

परिचय

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने महिला सशक्तीकरण की महत्ता को रेखांकित करते हुए एक बार कहा था— *"लोगों को जगाने के लिए, महिलाओं को जागृत होना होगा; एक बार जब वह आगे बढ़ती है, तो परिवार चलता है, गाँव चलता है और पूरा देश चलता है।"* नेहरू जी का यह विचार आज के सूचना प्रधान और डिजिटल युग में और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। वर्तमान में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) दुनिया भर में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के सबसे सशक्त माध्यम के रूप में उभरी है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, डिजिटल बैंकिंग और ई-गवर्नेंस जैसी सेवाओं ने महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार, सुरक्षा और सामाजिक भागीदारी के नए द्वार खोले हैं। हालाँकि, डिजिटल क्रांति के ये लाभ सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच सके हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के लिए ICT तक पहुँच और उसका प्रभावी उपयोग आज भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। उत्तर प्रदेश का **कौशाम्बी जिला** इस असमानता का एक प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रयागराज मंडल में स्थित और ऐतिहासिक रूप से समृद्ध (अशोक स्तंभ और प्राचीन बौद्ध विहार के लिए प्रसिद्ध) होने के बावजूद, विकास के आधुनिक मापदंडों पर यह जिला काफी पीछे है।

जनगणना 2011 के अनुसार, कौशाम्बी की कुल जनसंख्या लगभग 15.99 लाख है, जिसका 92.22% हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। जिले की कुल साक्षरता दर 61.28% है, किंतु महिला साक्षरता दर मात्र **48.56%** है। इसके अतिरिक्त, जिले का लिंगानुपात 908 है, जो राष्ट्रीय औसत (940) से काफी कम है। साक्षरता की कमी और ग्रामीण परिवेश के कारण यहाँ की महिलाओं का डिजिटल समावेशन एक जटिल प्रश्न बना हुआ है।

इस पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत शोध-पत्र निम्नलिखित शोध-प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास करता है:

1. कौशाम्बी जिले में महिलाओं द्वारा ICT उपकरणों (मोबाइल, इंटरनेट, डिजिटल सेवाओं) का उपयोग किस स्तर पर किया जा रहा है?
2. ICT का उपयोग उनके व्यक्तिगत, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, तकनीकी और राजनीतिक सशक्तीकरण में क्या भूमिका निभाता है?
3. डिजिटल पहुँच और उपयोग के मार्ग में जाति, वर्ग, शिक्षा और पितृसत्तात्मक मानदंड (जैसे परिवार की अनुमति) जैसी कौन-सी बाधाएँ विद्यमान हैं?

यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। विश्लेषण हेतु **जनगणना 2011, NFHS-5, ICRIER SIDE रिपोर्ट 2025, भारतनेट परियोजना की रिपोर्ट** तथा विभिन्न अकादमिक शोध-पत्रों का उपयोग किया गया है। साथ ही, कोविड-19 महामारी के दौरान शिक्षा और डिजिटल पहुँच में आए परिवर्तनों पर भी विचार किया गया है

2. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT): अवधारणा एवं विस्तार

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) एक व्यापक और बहुआयामी शब्द है, जो उन सभी तकनीकी उपकरणों, प्रणालियों और सेवाओं को समाहित करता है जो सूचना को डिजिटल रूप में एकत्रित, संग्रहीत, संसाधित और प्रसारित करने का कार्य करते हैं। इसके अंतर्गत हार्डवेयर (कंप्यूटर, स्मार्टफोन, टैबलेट), सॉफ्टवेयर, नेटवर्क (इंटरनेट, वायरलेस नेटवर्क) और संचार के विभिन्न माध्यम (ईमेल, सोशल मीडिया, वीडियो-कॉन्फ्रेंसिंग) शामिल हैं। आधुनिक युग में रेडियो, टेलीविजन और सैटेलाइट संचार भी ICT के अभिन्न अंग बन चुके हैं। **संयुक्त राष्ट्र (UN)** और **विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)** जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने ICT को **सतत विकास लक्ष्यों (SDGs)**, विशेष रूप से **लक्ष्य-5 (लैंगिक समानता)** को प्राप्त करने के लिए एक अनिवार्य उपकरण माना है। यह तकनीक केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, वित्त और ई-गवर्नेंस के माध्यम से सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है।

3 . कौशाम्बी जिले के संदर्भ में ICT की स्थिति

कौशाम्बी जैसे ग्रामीण प्रधान जिले में ICT का व्यावहारिक अर्थ गाँवों तक पहुँची **ऑप्टिकल फाइबर केबल (भारतनेट परियोजना)**, **कॉमन सर्विस सेंटर (CSC)**, **डिजिटल लाइब्रेरी**, और विभिन्न सरकारी योजनाओं (जैसे जन धन, उज्ज्वला, पीएम-किसान) के ऑनलाइन पोर्टल्स से है।हालाँकि, जमीनी हकीकत यह है कि बुनियादी ढाँचे के विस्तार के बावजूद, इन सुविधाओं का लाभ महिलाओं तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया है। जिले में डिजिटल साक्षरता की कमी और तकनीकी संसाधनों तक सीमित पहुँच के कारण 'डिजिटल विभाजन' (Digital Divide) की स्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अधिकांश डिजिटल सुविधाएँ या तो अभी भी निर्माण के चरण में हैं या सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं के कारण महिलाओं की पहुँच से दूर हैं।

4. शोध के उद्देश्य (Research Objectives)

प्रस्तुत शोध-पत्र मुख्य रूप से कौशाम्बी जिले की ग्रामीण महिलाओं के जीवन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के प्रभाव और उसकी पहुँच का मूल्यांकन करने पर केंद्रित है। इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **ICT उपकरणों की उपलब्धता और पहुँच का आकलन करना:** कौशाम्बी जिले में महिलाओं द्वारा मोबाइल फोन, इंटरनेट, डिजिटल बैंकिंग और सरकारी ई-सेवाओं (जैसे ई-गवर्नेंस पोर्टल) के उपयोग की वर्तमान स्थिति और आवृत्ति का विश्लेषण करना।
2. **बहुआयामी सशक्तीकरण में ICT की भूमिका का परीक्षण करना:** यह जाँचना कि डिजिटल उपकरणों के उपयोग ने महिलाओं के व्यक्तिगत, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, तकनीकी और राजनीतिक सशक्तीकरण में किस सीमा तक योगदान दिया है।
3. **डिजिटल विभाजन (Digital Divide) के कारणों की पहचान करना:** उन प्रमुख सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक बाधाओं (जैसे निम्न साक्षरता, जाति, वर्ग और पितृसत्तात्मक मानदंड) का अध्ययन करना, जो महिलाओं को डिजिटल संसाधनों के पूर्ण उपयोग से वंचित रखती हैं।
4. **सरकारी योजनाओं और बुनियादी ढाँचे के प्रभाव का मूल्यांकन:** जिले में भारतनेट परियोजना, कॉमन सर्विस सेंटर (CSC) और डिजिटल लाइब्रेरी जैसी योजनाओं की प्रभावशीलता और महिलाओं तक उनकी पहुँच का विश्लेषण करना।
5. **नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना:** अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर कौशाम्बी जिले में महिलाओं के डिजिटल समावेशन और सशक्तीकरण हेतु व्यावहारिक एवं प्रभावी सिफारिशें प्रदान करना।

5. शोध पद्धति (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति **वर्णनात्मक** और **विश्लेषणात्मक** है। शोध की कार्यप्रणाली का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

- **अध्ययन का स्वरूप:** यह शोध-पत्र पूर्णतः **द्वितीयक आंकड़ों** पर आधारित है। इसमें किसी भी प्रकार के प्राथमिक सर्वेक्षण का उपयोग नहीं किया गया है।
- **डेटा के स्रोत:** शोध की प्रमाणिकता सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित आधिकारिक और विश्वसनीय स्रोतों से आंकड़े एकत्रित किए गए हैं:
    - **जनगणना 2011:** कौशाम्बी जिले की जनसंख्या, ग्रामीण-शहरी विभाजन और साक्षरता दर के लिए।
    - **NFHS-5 (2019-21):** स्वास्थ्य, लिंगानुपात और महिलाओं की घरेलू स्थिति के आंकड़ों हेतु।
    - **ICRIER SIDE रिपोर्ट 2025:** उत्तर प्रदेश और ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अर्थव्यवस्था और इंटरनेट उपयोग की स्थिति के लिए।

- **सरकारी रिपोर्ट:** भारतनेट परियोजना की प्रगति रिपोर्ट और मंत्रालय (MeitY) के आंकड़े।
- **अकादमिक साहित्य:** विभिन्न प्रतिष्ठित शोध-पत्रों, 'शोध मंथन', और 'जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट' के लेखों का संदर्भ लिया गया है।

- **विश्लेषण की विधि:** एकत्रित आंकड़ों का गुणात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण किया गया है। इसमें यह देखा गया है कि डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता और महिलाओं के वास्तविक सशक्तिकरण के बीच कितना अंतर है।
- **अध्ययन क्षेत्र:** शोध का भौगोलिक दायरा उत्तर प्रदेश के **कौशाम्बी जिले** तक सीमित है, जिसमें ग्रामीण परिवेश की विशिष्टताओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

6. डेटा विश्लेषण एवं चर्चा

कौशाम्बी जिले में महिलाओं की स्थिति और डिजिटल पहुँच के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते हैं:

6.1 साक्षरता और लिंगानुपात का तुलनात्मक विश्लेषण

जनगणना 2011 के अनुसार, कौशाम्बी में साक्षरता के स्तर पर व्यापक अंतराल है। जिले की औसत साक्षरता दर **61.28%** है, जबकि महिला साक्षरता दर केवल **48.56%** है। यह 12.72% का अंतर डिजिटल साक्षरता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।

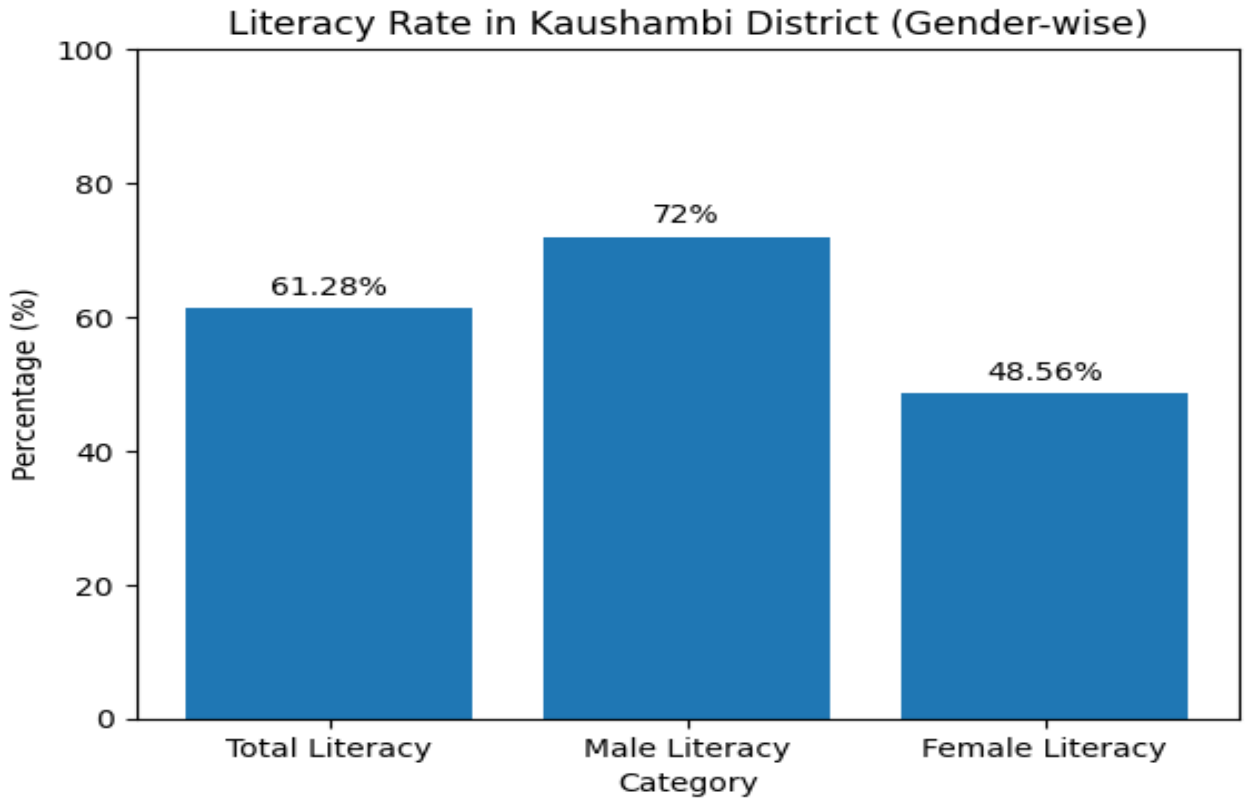

6.2 डिजिटल लैंगिक अंतराल (The Digital Gender Gap)

ICRIER SIDE रिपोर्ट 2025 के अनुसार, उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट का उपयोग करने वाले पुरुषों (30-40%) की तुलना में महिलाओं (10-20%) की संख्या बहुत कम है। कौशाम्बी में यह स्थिति और भी गंभीर है क्योंकि यहाँ 92% जनसंख्या ग्रामीण है।

- **शीर्षक:** ग्रामीण उत्तर प्रदेश में इंटरनेट उपयोगकर्ता (लैंगिक आधार पर)

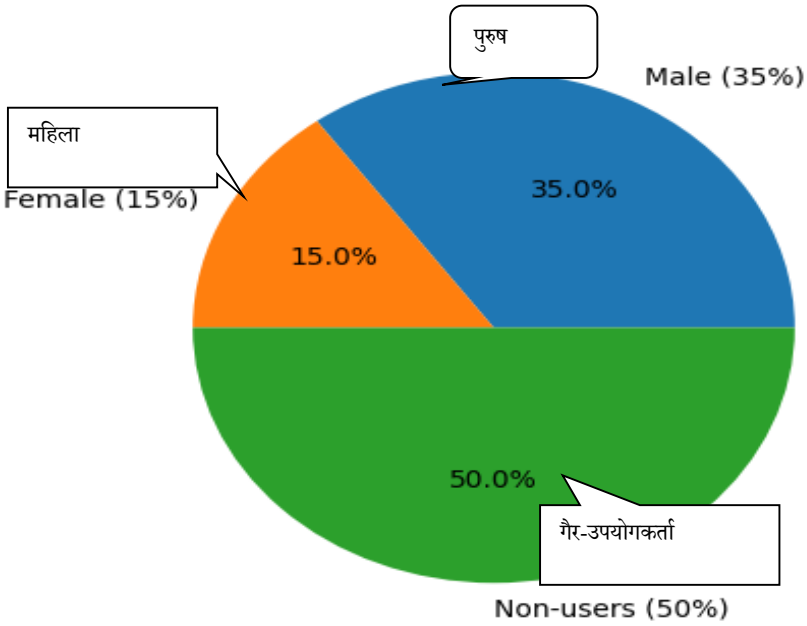

6.3 सशक्तिकरण के आयामों पर ICT का प्रभाव

अध्ययन से प्राप्त डेटा के अनुसार, ICT का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में असमान रहा है:

सशक्तिकरण का आयाम	प्रभाव का स्तर (अनुमानित)	मुख्य कारक
आर्थिक	मध्यम	SHG और डिजिटल बैंकिंग (35%)
शैक्षिक	निम्न-मध्यम	ऑनलाइन कक्षाएं (12% लड़कियां)
मनोवैज्ञानिक	उच्च	आत्मविश्वास में 40% की वृद्धि
राजनीतिक	निम्न	सोशल मीडिया और ऑनलाइन शिकायतें

6.4 डिजिटल साक्षरता अभियानों की पहुँच

प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (PMGDISHA) के तहत कौशाम्बी में लगभग **15,000 महिलाओं** को प्रशिक्षित किया गया है। यद्यपि यह संख्या सकारात्मक है, लेकिन यह जिले की कुल महिला जनसंख्या का केवल **5%** है।

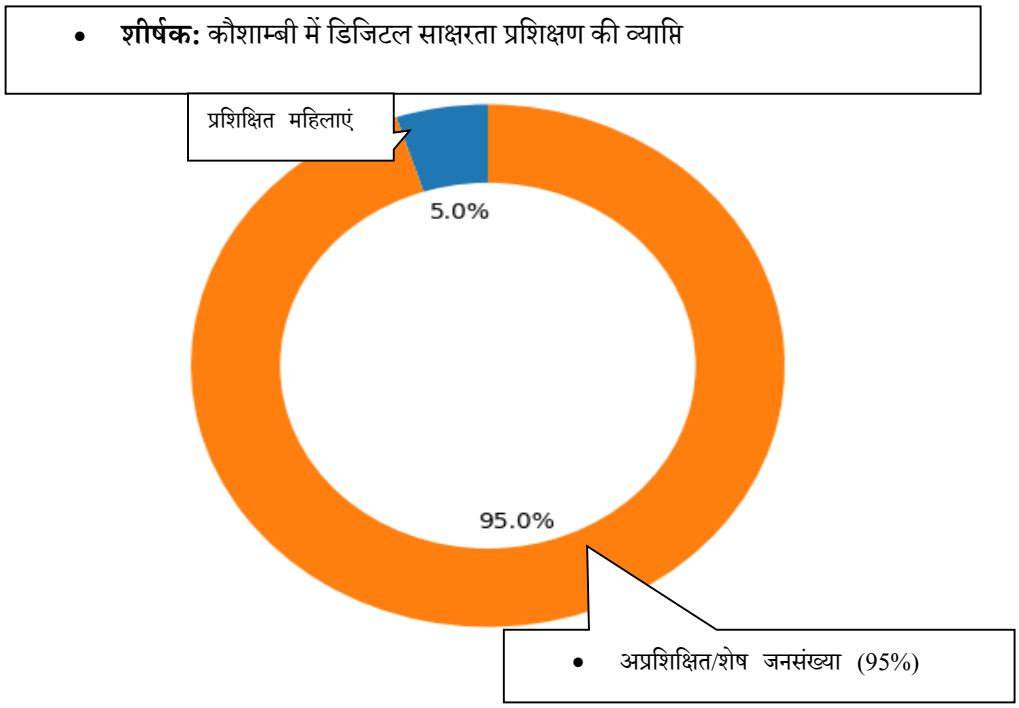

चर्चा (Discussion)

आंकड़ों का विश्लेषण दर्शाता है कि कौशाम्बी में **'डिजिटल विभाजन' (Digital Divide)** केवल तकनीकी कमी नहीं है, बल्कि यह शैक्षिक और सामाजिक संरचनाओं से जुड़ा है। 48.56% साक्षरता दर यह संकेत देती है कि आधी से अधिक महिला आबादी बिना बुनियादी शिक्षा के सीधे जटिल डिजिटल सेवाओं का लाभ नहीं उठा सकती।

कोविड-19 के दौरान केवल 12% लड़कियों के पास स्मार्टफोन होना यह सिद्ध करता है कि संकट के समय में भी संसाधनों पर पहला अधिकार पुरुषों का रहा है। हालांकि, SHG के माध्यम से 35% महिलाओं का डिजिटल बैंकिंग से जुड़ना एक 'सिल्वर लाइनिंग' (आशा की किरण) की तरह है, जो यह दर्शाता है कि सामुदायिक माध्यमों से तकनीकी सशक्तिकरण तेजी से संभव है।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध-पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कौशाम्बी जिले में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) और महिला सशक्तिकरण के बीच का संबंध अत्यंत जटिल और प्रारंभिक अवस्था में है। डेटा दर्शाता है कि ICT केवल एक तकनीकी उपकरण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक दृष्टिकोण बदलने का एक सशक्त माध्यम है। जहाँ एक ओर 'बैंक सखियों' और 'डिजिटल सखियों' ने अपनी आय और आत्मविश्वास में **40% तक की वृद्धि** दर्ज की है, वहीं दूसरी ओर जिले की **48.56% की निम्न महिला साक्षरता दर** और **लैंगिक डिजिटल अंतराल** (पुरुषों की तुलना में महिलाओं का 3 गुना कम इंटरनेट उपयोग) इस क्रांति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। निष्कर्षतः, कौशाम्बी में 92% ग्रामीण आबादी के बीच डिजिटल सशक्तिकरण तभी संभव है जब इसे केवल 'उपकरण वितरण' तक सीमित न रखकर 'कौशल विकास' और 'सामाजिक जागरूकता' से जोड़ा जाए।

8. नीतिगत सिफारिशें

अध्ययन के आधार पर कौशाम्बी जिले में महिलाओं के डिजिटल समावेशन हेतु निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत की जाती हैं:

1. **'साक्षरता प्रथम' अभियान:** चूँकि कौशाम्बी में महिला साक्षरता दर काफी कम है, अतः सरकार को **"डिजिटल साक्षरता से पहले बुनियादी साक्षरता"** का मॉडल अपनाना चाहिए। साक्षर महिलाओं को ही ICT का बेहतर लाभ मिल सकता है।

2. **महिला-केंद्रित डिजिटल प्रशिक्षण:** गाँव स्तर पर केवल महिलाओं के लिए **'डिजिटल पाठशाला'** की स्थापना की जाए, जहाँ महिला प्रशिक्षक ही प्रशिक्षण दें। यह पितृसत्तात्मक बाधाओं को कम करने में सहायक होगा।
3. **SHG-ICT एकीकरण:** जिले के सभी स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को स्मार्टफोन और डिजिटल पेमेंट प्रशिक्षण से अनिवार्य रूप से जोड़ा जाए। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी।
4. **डिजिटल लाइब्रेरी में 'सुरक्षित समय' :** कौशाम्बी के 451 गाँवों में खुलने वाली डिजिटल लाइब्रेरियों में दिन के **2-3 घंटे केवल महिलाओं के लिए** आरक्षित होने चाहिए, ताकि वे बिना किसी सामाजिक संकोच के तकनीक सीख सकें।
5. **सामुदायिक जागरूकता (पुरुषों की भागीदारी):** डिजिटल उपयोग को 'बदनामी' या 'विपथन' मानने वाली सोच को बदलने के लिए ग्राम सभाओं में जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। पुरुषों को यह समझाना आवश्यक है कि महिला का डिजिटल साक्षर होना परिवार की आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक है ।

6. **सस्ते डेटा प्लान और सुरक्षा:** ग्रामीण महिलाओं के लिए विशेष 'डिजिटल सुरक्षा' कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ ताकि वे ऑनलाइन धोखाधड़ी और साइबर अपराध से बच सकें। साथ ही, CSR फंड के माध्यम से कम आय वाली महिलाओं को रियायती दरों पर स्मार्टफोन उपलब्ध कराए जाने चाहिए ।

संदर्भ (References)

1. **जनगणना भारत (2011).** *जिला जनगणना पुस्तिका: कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश)*. रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार।
2. **IIPS (2021).** *राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5), 2019-21: उत्तर प्रदेश रिपोर्ट*. इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज (IIPS) और आईसीएफ।
3. **ICRIER (2025).** *State of India's Digital Economy (SIDE) Report 2025*. इंडियन काउंसिल फॉर रिसर्च ऑन इंटरनेशनल इकोनॉमिक रिलेशंस।
4. **भारत सरकार (2024).** *भारतनेट परियोजना – प्रगति पत्र*. इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY), नई दिल्ली।
5. **उत्तर प्रदेश डिजिटल लिटरेसी मिशन (2023).** *प्रशिक्षण और कवरेज डेटा रिपोर्ट*. उत्तर प्रदेश सरकार।
6. **न्यूज़18 हिंदी (2026, जनवरी).** *कौशाम्बी के 451 गांवों में खुलेगी डिजिटल लाइब्रेरी*. [वेबसाइट लिंक से प्राप्त]।
7. **न्यूज़18 हिंदी (2026, फरवरी).** *कौशाम्बी में महिलाओं की नई पहचान, स्वयं सहायता समूह से जुड़कर बनीं आत्मनिर्भर*. [वेबसाइट लिंक से प्राप्त]।
8. **राणा, आर. के., एवं कुमार, एन. (2025).** भारत की महिलाओं के सशक्तीकरण में डिजिटलीकरण की भूमिका का विश्लेषण. *शोध मंथन*, खंड 16(4), पृ. 45-60.
9. **कुमार, ए., एवं सिंह, पी. (2023).** डिजिटल साक्षरता और ग्रामीण महिला सशक्तीकरण: एक अध्ययन. *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट*, 42(2), 112-130.
10. **गूगल एवं टाटा ट्रस्ट (2022).** *Internet Saathi Programme Impact Assessment Report*. [आधिकारिक वेबसाइट रिपोर्ट]।
11. **GSMA (2024).** *The Mobile Gender Gap Report 2024*. ग्लोबल सिस्टम फॉर मोबाइल कम्युनिकेशंस एसोसिएशन।
12. **विवेक रिसर्च जर्नल (2021, मार्च 8).** *महिला सशक्तिकरण विशेषांक*. ISSN: 2581-8848.
13. **आधिकारिक वेबसाइटें (2024).** *माई सेफ्टी पिन, बीसेफ, लेटस्ट्रैक, रेस्क्यूअर, सिटीजनकॉप्प (सुरक्षा ऐप्स)*. [तकनीकी विवरण]।
14. **योजना आयोग (2023).** *महिला सशक्तीकरण पर डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रभाव – नीति दस्तावेज़*. भारत सरकार।
15. **राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW).** *ऑनलाइन शिकायत पोर्टल डेटा (2024-25)*. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

वृद्धावस्था में अकेलापन और सामाजिक अलगाव एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. विनय कुमार खरबार
असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी जी कॉलेज महराजगंज
ईमेल –vinay.kharbar2011@gmail.com
मोबाइल न.–8127499963

सारांश

मानव जीवन के चक्र में वृद्धावस्था अंतिम पड़ाव है, जिसे प्रायः अनुभवों की पूंजी कहा जाता है। हालाँकि, आधुनिक समाज में यह अवस्था सम्मान और शांति के बजाय अकेलेपन और सामाजिक अलगाव का पर्याय बनती जा रही है। तकनीकी प्रगति और बदलती जीवन शैली ने जहाँ भौतिक दूरियां कम की हैं, वहीं भावनात्मक स्तर पर बुजुर्गों को समाज के हाशिए पर धकेल दिया है।

अकेलापन एक मानसिक और भावनात्मक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति अपनों के बीच रहकर भी खुद को कटा हुआ महसूस करता है। इसके विपरीत, सामाजिक अलगाव एक वस्तुनिष्ठ स्थिति है, जहाँ व्यक्ति के पास सामाजिक संपर्क के साधनों या मित्रों और रिश्तेदारों की भौतिक कमी होती है। वृद्धावस्था में ये दोनों स्थितियां मिलकर बुजुर्गों के जीवन को कष्टकारी बना देती हैं।*वृद्धावस्था जीवन का वह समय है जब व्यक्ति को सबसे अधिक संबल और सम्मान की आवश्यकता होती है। सामाजिक अलगाव और अकेलेपन को केवल सरकारी नीतियों या वृद्धाश्रमों के सहारे नहीं सुलझाया जा सकता। इसके लिए एक संवेदनशील दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जहाँ हम यह समझें कि बुजुर्ग समाज का बोझ नहीं, बल्कि हमारी जड़ें हैं। उन्हें मुख्यधारा में शामिल करना न केवल उनका अधिकार है, बल्कि एक सभ्य समाज का कर्तव्य भी हैं।*

शब्द कुंजी – वृद्धावस्था , अकेलापन, अलगाव, परिवार, संवेदना , भागीदारी।

प्रस्तावना

वृद्धावस्था मानव जीवन का ऐसा चरण है जो अनुभव, परिपक्वता और संतुलन का प्रतीक माना जाता है, परंतु आधुनिक समाज में यह अवस्था अक्सर अकेलेपन, सामाजिक उपेक्षा और भावनात्मक संकट का कारण बन जाती है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से वृद्धावस्था केवल जैविक परिवर्तन की अवस्था नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक संरचना का परिणाम भी है जो व्यक्ति की भूमिका, संबंधों और सामाजिक स्थान को परिवर्तित करती है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, परिवार की बदलती संरचना और उपभोक्तावादी संस्कृति ने वृद्धजन की सामाजिक स्थिति को हाशिए पर पहुँचा दिया है। जहां पहले संयुक्त परिवारों में वृद्धों को सम्मान और सक्रिय भूमिका मिलती थी, आज के एकल परिवारों में उनकी उपयोगिता को सीमित कर दिया गया है। इसके

परिणामस्वरूप वृद्धजन न केवल अकेलेपन का अनुभव करते हैं बल्कि सामाजिक अलगाव के शिकार भी हो जाते हैं।

यह शोधपत्र इस पर केंद्रित है कि सामाजिक संरचनाओं, परिवार, नीति एवं सामाजिक व्यवहार में हो रहे बदलाव वृद्धावस्था में अकेलेपन और सामाजिक अलगाव को कैसे बढ़ावा देते हैं। शोध का उद्देश्य यह भी है कि किस प्रकार सामाजिक समर्थन, नीतियाँ एवं सामुदायिक भागीदारी इस स्थिति को सुधार सकती हैं।

परिवार की बदलती संरचना और वृद्धजन

वृद्धावस्था को पारंपरिक रूप से केवल जैविक और कालानुक्रमिक दृष्टिकोण से देखा जाता रहा है, लेकिन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य इसे एक सामाजिक प्रक्रिया और संरचना के रूप में देखता है। समाजशास्त्र में वृद्धावस्था का तात्पर्य उस अवस्था से है जब व्यक्ति की सामाजिक भूमिकाएँ, जिम्मेदारियाँ, और सामाजिक मान्यता में परिवर्तन आता है। यह न केवल व्यक्ति के जीवन में बल्कि समाज में भी गहरे प्रभाव उत्पन्न करता है। टालकॉट पार्सन्स का 'भूमिका सिद्धांत' वृद्धजन की सामाजिक स्थिति को समझने में सहायक सिद्ध होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, समाज एक प्रणाली है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमिका निभाता है। जब कोई व्यक्ति वृद्धावस्था में प्रवेश करता है, तो उसकी भूमिका में परिवर्तन आता है, जैसे कि वह सेवा से सेवानिवृत्त हो जाता है, पारिवारिक निर्णयों में उसकी भूमिका कम हो जाती है, और सामाजिक क्रियाकलापों से भी वह धीरे–धीरे अलग होने लगता है। इससे उसकी सामाजिक पहचान और स्वीकृति पर प्रभाव पड़ता है।

कुंग और हेनरी द्वारा प्रस्तुत 'डिसएंगेजमेंट थ्योरी' (Disengagement Theory) के अनुसार वृद्धजन और समाज के बीच एक प्रकार का परस्पर पृथक्करण होता है। वृद्धजन धीरे–धीरे सामाजिक गतिविधियों से हटते जाते हैं और समाज भी उन्हें कम सक्रिय भूमिका में स्वीकार करता है। यह प्रक्रिया कभी–कभी स्वाभाविक मानी जाती है, परंतु इसके परिणामस्वरूप वृद्धजन सामाजिक अलगाव और अकेलेपन का अनुभव करते हैं। इसके विपरीत, 'गतिशीलता सिद्धांत' (Activity Theory) यह मानता है कि वृद्धजन को समाज में सक्रिय बनाए रखना उनके मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यह सिद्धांत बताता है कि समाज में सक्रिय भागीदारी वृद्धजन को सामाजिक पहचान और आत्म–सम्मान देती है।

इन सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि वृद्धावस्था केवल एक जैविक अवस्था नहीं है, बल्कि यह सामाजिक भूमिका, संबंध और सामाजिक मान्यता के परिप्रेक्ष्य से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब समाज वृद्धजन की भूमिका को सीमित या अप्रासंगिक मान लेता है, तब वे सामाजिक अलगाव का शिकार हो जाते हैं।

अकेलापन और सामाजिक अलगाव का अंतर

अकेलापन और सामाजिक अलगाव दो ऐसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अनुभव हैं जो अक्सर वृद्धावस्था में देखने को मिलते हैं। ये दोनों अनुभव एक–दूसरे से जुड़े हुए होते हुए भी भिन्न हैं। अकेलापन (Loneliness) एक व्यक्ति की भावनात्मक अवस्था है, जिसमें उसे लगता है कि वह अन्य लोगों से जुड़ा हुआ नहीं है। जबकि सामाजिक अलगाव (Social Isolation) एक वस्तुनिष्ठ स्थिति है, जिसमें व्यक्ति के सामाजिक संपर्क की संख्या और गुणवत्ता दोनों में कमी होती है। वृद्धावस्था में यह स्थिति और अधिक जटिल हो जाती है क्योंकि इस अवस्था में व्यक्ति अपने जीवनसाथी, मित्रों, या सहकर्मियों को खो देता है, बच्चों से दूरी बढ़ जाती है और स्वास्थ्य संबंधित समस्याएं भी सामाजिक सहभागिता को सीमित कर देती हैं। उदाहरण के लिए, एक वृद्ध महिला जो अकेले रहती है, और जिनके बच्चे विदेश में बस चुके हैं, वह भले ही आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो, लेकिन भावनात्मक रूप से अकेली महसूस कर सकती है।

अध्ययन बताते हैं कि अकेलापन वृद्धजन में मानसिक तनाव, अवसाद, उच्च रक्तचाप, और हृदय संबंधी रोगों का कारण बनता है। सामाजिक अलगाव भी समान रूप से खतरनाक है क्योंकि इससे व्यक्ति सामाजिक गतिविधियों से कट जाता है, जिससे उसकी पहचान, सहभागिता और आत्म–सम्मान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ब्रिटिश समाजशास्त्री रॉबर्ट वीस ने अकेलेपन को दो भागों में विभाजित किया है—भावनात्मक अकेलापन और सामाजिक अकेलापन। भावनात्मक अकेलापन उस समय होता है जब कोई गहरा व्यक्तिगत संबंध जैसे जीवनसाथी का निधन हो जाता है, जबकि सामाजिक अकेलापन उस समय होता है जब व्यक्ति सामाजिक नेटवर्क या समुदाय से अलग हो जाता है। वृद्धजन प्रायः इन दोनों ही अवस्थाओं का अनुभव करते हैं।
इसलिए, यह आवश्यक है कि अकेलेपन और सामाजिक अलगाव को केवल व्यक्तिगत समस्या न मानकर, उसे एक सामाजिक संरचना और नीति की विफलता के रूप में देखा जाए।

शहरीकरण और प्रवासन का प्रभाव

भारत में तेजी से हो रहे शहरीकरण और आर्थिक अवसरों की तलाश में युवाओं के बड़े पैमाने पर प्रवासन ने पारिवारिक ढांचे में गहरा परिवर्तन लाया है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे कस्बों में यह परिघटना अधिक स्पष्ट है, जहां वृद्धजन अपने बच्चों से दूर अकेले जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाते हैं। यह स्थिति वृद्धों के मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। शहरों की ओर पलायन करने वाले युवा जहां आधुनिक जीवन शैली अपना रहे हैं, वहीं गांवों में रह रहे वृद्धजन सामाजिक सहभागिता से कटते जा रहे हैं। उनका जीवन सीमित होता जा रहा है—न मित्र मंडली, न किसी प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों में भागीदारी। फलस्वरूप उनमें अकेलापन, अवसाद, आत्म–संदेह और आत्म–सम्मान की हानि जैसी समस्याएं उभरती हैं।
इसके अलावा, जब देखभाल के लिए कोई पारिवारिक सदस्य पास नहीं होता, तो वृद्धजनों की स्वास्थ्य सेवाओं, भावनात्मक समर्थन और सुरक्षा तक पहुंच बाधित हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता और डिजिटल सेवाओं तक पहुँच की कमी भी उनके लिए समस्याएं बढ़ा देती हैं। प्रवासन की इस लहर ने पारंपरिक 'सांझा जीवन शैली' को खंडित कर दिया है। परिवार अब भौगोलिक रूप से बंट गए हैं, और वृद्धजन उस आत्मीय सामाजिक संबंध से वंचित हो गए हैं, जो पहले उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा था। इसलिये आवश्यक है कि स्थानीय समुदायों, सरकार और सामाजिक संगठनों की भागीदारी से ऐसे तंत्र विकसित किए जाएं जो ग्रामीण वृद्धजनों को सामाजिक संबल और मानसिक सुरक्षा दे सकें।

. डिजिटल डिवाइड और वृद्धजन

डिजिटल तकनीक की तेजी से बढ़ती दुनिया में जहां युवा वर्ग नित्य नवीन माध्यमों से जुड़ रहा है, वहीं वृद्धजन प्रायः तकनीकी साक्षरता के अभाव में समाज के इस डिजिटल स्वरूप से कटते जा रहे हैं। यह विभाजन—जिसे हम 'डिजिटल डिवाइड' कहते हैं—वृद्धों के सामाजिक अलगाव का एक बड़ा कारण बनता जा रहा है। वृद्धजन न तो स्मार्टफोन, कंप्यूटर या सोशल मीडिया के प्रयोग में सहज होते हैं, न ही उन्हें ऑनलाइन सेवाओं का प्रयोग करने में आत्मविश्वास होता है। जब परिवार के सदस्य, विशेषकर बच्चे, डिजिटल माध्यमों से ही संवाद करते हैं, तो वृद्धजन उस संवाद से बाहर हो जाते हैं। यह उन्हें अनजाने में ही हाशिए पर डाल देता है। डिजिटल साक्षरता के अभाव में वे न केवल सामाजिक रूप से कटते हैं, बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं, वित्तीय लेन–देन, सरकारी योजनाओं और मनोरंजन से भी वंचित रह जाते हैं। यह स्थिति उन्हें आत्मनिर्भर बनने से रोकती है और आत्मसम्मान को भी ठेस पहुंचाती है।
यह आवश्यक है कि सरकार व सामाजिक संगठनों द्वारा वृद्धजनों के लिए डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएं, जो सरल भाषा, स्थानीय उदाहरणों व व्यवहारिक प्रशिक्षण पर आधारित हों। साथ ही, तकनीकी उपकरणों

को बुजुर्गों की आवश्यकताओं के अनुरूप सरल बनाया जाए। डिजिटल दुनिया में वृद्धों की भागीदारी सुनिश्चित करने से उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा, अकेलापन घटेगा और वे पुनः सामाजिक संवाद में सक्रिय हो सकेंगे। इससे वे न केवल तकनीक से जुड़ेंगे, बल्कि जीवन की सार्थकता भी अनुभव करेंगे।

राज्य की भूमिका और नीतिगत समर्थन

भारत सरकार वृद्धजनों के लिए कई योजनाओं और नीतियों का संचालन करती है जिनका उद्देश्य उन्हें सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक संबल प्रदान करना है। इन योजनाओं में प्रमुख हैं – 'राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम' के अंतर्गत वृद्धावस्था पेंशन योजना, 'राष्ट्रीय वयोश्री योजना', 'अटल वयो अभ्युदय योजना', 'आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016' तथा 'वरिष्ठ नागरिकों का रख–रखाव और कल्याण अधिनियम 2007'। इन योजनाओं का उद्देश्य वृद्धजनों को आर्थिक सहायता, सहायक उपकरण, आवास, स्वास्थ्य सेवाएं और सुरक्षा देना है। हालांकि, इन योजनाओं के क्रियान्वयन में अनेक व्यावहारिक बाधाएं आती हैं। इसमें प्रमुख हैं – सूचना का अभाव, डिजिटल माध्यमों तक पहुंच की कमी, ग्राम स्तरीय अधिकारियों की निष्क्रियता, भ्रष्टाचार और सामाजिक कलंक।

इसके अतिरिक्त, कई वृद्धजन दस्तावेजी जटिलताओं या पहचान–पत्र की अनुपलब्धता के कारण लाभ से वंचित रह जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इन योजनाओं की पहुँच विशेष रूप से कमजोर है। राज्य को चाहिए कि वह न केवल इन योजनाओं का समुचित प्रचार करे, बल्कि पंचायत स्तर पर समर्पित हेल्प डेस्क या वरिष्ठ नागरिक सेवा केंद्र स्थापित करे, जो पेंशन आवेदन, स्वास्थ्य सेवाओं की जानकारी, और सामाजिक गतिविधियों के लिए मार्गदर्शन दें।

इसके अलावा, न्याय प्रणाली के समक्ष वरिष्ठ नागरिकों के मामलों की शीघ्र सुनवाई और सरकारी विभागों में 'वरिष्ठ नागरिक सहायता प्रकोष्ठ' की स्थापना भी सकारात्मक बदलाव ला सकती है। राज्य की भूमिका तब ही प्रभावी मानी जा सकती है जब वह केवल योजना निर्माण तक सीमित न रहे, बल्कि धरातल पर संवेदनशील, सुलभ और सम्मानजनक कार्यान्वयन सुनिश्चित करे।

सामाजिक संगठन और सामुदायिक सहभागिता

वृद्धजन की सामाजिक भागीदारी बढ़ाने और अलगाव को कम करने में सामाजिक संगठनों और सामुदायिक पहल की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। कई गैर–सरकारी संगठन (NGOs), धार्मिक संस्थाएं, और स्थानीय समितियाँ वृद्धों को सामाजिक जीवन से जोड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम संचालित करते हैं। वृद्धाश्रम जहाँ कभी समाज से कटने का प्रतीक समझा जाता था, अब धीरे–धीरे एक सकारात्मक विकल्प के रूप में उभर रहा है—विशेषकर उन वृद्धों के लिए जो अकेले हैं या जिन्हें परिवारिक सहयोग नहीं मिल पा रहा है। इन संस्थानों में आवास, स्वास्थ्य सेवा, मनोरंजन, आध्यात्मिक गतिविधियां और मानसिक परामर्श जैसी सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। सामुदायिक केंद्रों द्वारा चलाई जाने वाली 'डे–केयर' योजनाएं, वृद्ध मेल–मिलाप कार्यक्रम, सामूहिक उत्सव, खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधियां वृद्धों को सामाजिक तौर पर सक्रिय रखने में मदद करती हैं।

इसके अतिरिक्त, युवा स्वयंसेवकों द्वारा 'इंटर–जेनरेशन बॉन्डिंग' कार्यक्रम, जहां वे वृद्धों में समय बिताते हैं, कहानियाँ सुनते हैं या तकनीकी सहायता देते हैं—इससे दोनों पीढ़ियों के बीच समझ और सम्मान विकसित होता है। सामाजिक संगठनों को चाहिए कि वे वृद्धजनों की जरूरतों को समझें, उन्हें नीति निर्धारण में भागीदार बनाएं और स्थानीय स्तर पर एक ऐसी संरचना तैयार करें जो वृद्धजनों को गरिमा के साथ जीवन जीने का अवसर दे। वृद्धों की सामाजिक पुनर्संलग्नता न केवल उनके मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाती है,

बल्कि समाज को भी उनके अनुभव और ज्ञान से समृद्ध बनाती है। अतः सामूहिक भागीदारी वृद्धजनों के लिए सम्मानपूर्ण और सक्रिय जीवन सुनिश्चित करने की दिशा में एक कारगर कदम हो सकता है।

निष्कर्ष

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वृद्धावस्था एक ऐसा चरण है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत निर्बल हो जाता है। यह वह अवस्था है जब व्यक्ति को सबसे अधिक भावनात्मक समर्थन, सामाजिक मान्यता और पारिवारिक संरक्षण की आवश्यकता होती है परंतु आज के तेजी से बदलते सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में वृद्धजन दिन–ब–दिन अकेलेपन और सामाजिक अलगाव की स्थिति का शिकार हो रहे हैं।

वर्तमान समाज में संयुक्त परिवारों का विघटन, एकल परिवारों की प्रवृत्ति, शहरीकरण, भूमंडलीकरण, तकनीकी प्रगति और उपभोक्तावादी संस्कृति ने पारंपरिक मूल्य–व्यवस्थाओं को बदल डाला है। एक समय था जब वृद्धों को परिवार के मुखिया और अनुभव के स्रोत के रूप में देखा जाता था, लेकिन आज के परिवर्तित सामाजिक ढांचे में उनकी भूमिका सीमित और कभी–कभी उपेक्षित हो गई है। पीढ़ियों के बीच बढ़ता वैचारिक अंतर और संवाद की कमी वृद्धजनों को सामाजिक जीवन से दूर कर रही है। शहरीकरण और युवा वर्ग का ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों की ओर पलायन, वृद्धजनों को अकेले छोड़ने का एक बड़ा कारण बन गया है। विशेषकर ग्रामीण भारत में, जहाँ पारंपरिक रूप से वृद्धजन सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेते थे, अब वे अकेलेपन और सामाजिक बहिष्कार की स्थिति का अनुभव कर रहे हैं। यह अलगाव केवल भौतिक नहीं है, बल्कि भावनात्मक, मानसिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी होता है। तकनीकी विकास और डिजिटल संचार के युग में 'डिजिटल डिवाइड' ने वृद्धजनों को आधुनिक संवाद माध्यमों से काट दिया है। जहां युवा पीढ़ी सोशल मीडिया, ऑनलाइन सेवाओं और मोबाइल एप्स के माध्यम से निरंतर जुड़ी रहती है, वहीं अधिकांश वृद्धजन तकनीकी संसाधनों की समझ के अभाव में न केवल डिजिटल रूप से कटे रहते हैं, बल्कि स्वयं को अप्रासंगिक और असहाय भी महसूस करते हैं। यह स्थिति उनके आत्म–सम्मान, आत्मविश्वास और सामाजिक सहभागिता पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। राज्य और नीति–निर्माताओं द्वारा वृद्धजनों के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, जैसे – 'वृद्धावस्था पेंशन योजना', 'राष्ट्रीय वयोश्री योजना', 'वरिष्ठ नागरिक कल्याण अधिनियम', आदि। परंतु इन योजनाओं का क्रियान्वयन व्यवहारिक समस्याओं से ग्रस्त है। लाभार्थियों को योजनाओं की जानकारी नहीं होती, आवश्यक दस्तावेजों की अनुपलब्धता, भ्रष्टाचार और नौकरशाही की उदासीनता वृद्धजनों को इनसे दूर कर देती है। परिणामस्वरूप, वे सामाजिक और आर्थिक रूप से उपेक्षित हो जाते हैं।

इस समाजशास्त्रीय विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वृद्धावस्था में अकेलापन और सामाजिक अलगाव केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक मुद्दा नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक संरचना की विफलता का संकेत है। यह सामाजिक न्याय, सहभागिता और मानवीय गरिमा के मूल सिद्धांतों की उपेक्षा है। यदि समाज वृद्धजनों को सम्मानजनक जीवन देने में असफल होता है, तो यह न केवल मानवीय दृष्टिकोण से त्रासदी है, बल्कि सामाजिक समरसता और अंतःसंबंधों की बुनियाद को भी कमजोर करता है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वृद्धावस्था में अकेलापन और सामाजिक अलगाव की समस्या का समाधान केवल सरकारी योजनाओं से नहीं, बल्कि समाज के सभी घटकों—परिवार, समुदाय, शैक्षणिक संस्थाएं, स्वयंसेवी संगठन और राज्य की सम्मिलित भागीदारी से संभव है। हमें वृद्धजनों को केवल सेवा या सहानुभूति का पात्र मानने के बजाय उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में सहभागी बनाना होगा। उनके अनुभव, ज्ञान और मूल्यों को सामाजिक जीवन में पुनः प्रतिष्ठित करना होगा। तभी एक न्यायपूर्ण, समावेशी और संवेदनशील समाज की कल्पना साकार हो सकेगी।

References

1- Cumming, E. & Henry, W.E. (1961) Growing Old: The Process of Disengagement Basic Books.
2- Parsons, Talcott (1951) The Social System. The Free Press.
3- Victor, Christina R, et al. (2000) Social Isolation and Loneliness in Old Age: A Review and Euploration of the Literature- Reviews in Clinical Gerontology.
4- Ministry of Social Justice and Empowerment Government of India (2023) Schemes for Senior Citizens.
5- HelpAge India Reports 2022- 2023
6- Binstock, R. H & George L. K. (Eds.2006). Handbook of Aging and the Social Sciences- Academic Press.
7- (WHO) (2021). Social Isolation and Loneliness among Older People: Advocacy Brief.
8- Office of the Registrar General & Census Commissioner, India- (2011), 2021 Data.

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

भारतीय ग्रामीण समाज में बालिका शिक्षा की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

दीपक कुमार
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बरकी, सेवापुरी,
राजातालाब, वाराणसी

सारांश
भारतीय ग्रामीण समाज में बालिका शिक्षा की स्थिति में पिछले कुछ वर्षों में सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन आज भी यह अनेक सामाजिक और आर्थिक बाधाओं से प्रभावित है। पारंपरिक सोच, गरीबी, बाल विवाह, विद्यालयों की कमी, सुरक्षा संबंधी चिंताएँ तथा लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ बालिकाओं की शिक्षा में प्रमुख अवरोध बनी हुई हैं। सरकार ने बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', 'सुकन्या समृद्धि योजना', इन योजनाओं के कारण विद्यालयों में नामांकन की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन बालिकाओं का निरंतर अध्ययन और उच्च शिक्षा में उनकी भागीदारी अभी भी सीमित है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश बालिकाएँ प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं। कई बार उन्हें घरेलू कार्यों, छोटे भाई–बहनों की देखभाल या कृषि कार्यों में सहयोग के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। फिर भी, सरकारी जागरूकता अभियानों, स्वयं सहायता समूहों और महिला संगठनों के प्रयासों से धीरे–धीरे सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। अब अधिकतर अभिभावक अपनी बेटियों की शिक्षा के प्रति जागरूक हो रहे हैं और उन्हें पढ़ाने के लिए प्रेरित भी कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ग्रामीण समाज में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना है, जो द्वितीयक स्रोतों जैसे शोध पत्रों, पत्रिकाओं और इंटरनेट पर आधारित है।

मुख्य शब्द – ग्रामीण समाज, बालिका शिक्षा, साक्षरता, सशक्तिकरण, योजनाएँ।

प्रस्तावना

बालिकाओं की समाज में स्थिति समाजशास्त्र का एक कठिन और महत्वपूर्ण विषय है। अधिकांश विकासशील देशों में लड़कियों की स्थिति काफी कमजोर और उपेक्षित रहती है। इसका मुख्य कारण गरीबी, अज्ञानता और शिक्षा की कमी है। शिक्षा के अभाव में लड़कियों के मन में अपने प्रति हीन भावना पैदा हो जाती है। जन्म से ही वे अपनी माँ की कमजोर स्थिति देखती हैं और अपने भाई की तुलना में खुद को कम सुविधाएँ मिलते हुए महसूस करती हैं। लड़कियाँ अक्सर अपने भाई की इच्छाओं के आगे अपनी इच्छाओं को दबा देती हैं और समाज में पुरुषों के सामने उन्हें झुककर रहना पड़ता है। छोटी उम्र से ही उन्हें "पराया धन" मान लिया जाता है, जिससे उन्हें यह एहसास होता है कि उनका अपने ही घर पर पूरा अधिकार नहीं है। लगभग 20 साल

तक अपने ही घर में रहने के बावजूद उन्हें अपना घर नहीं माना जाता। एक ही माता–पिता की संतान होने के बावजूद लड़कियों को लड़कों की तुलना में अधिक भेदभाव, कमी और पूर्वाग्रह झेलना पड़ता है। आज के समय में पूरी दुनिया बालिकाओं की खराब स्थिति को सुधारने के लिए एकजुट हो रही है। मानव अधिकारों के तहत अब लड़कियों को प्राथमिकता दी जा रही है और उनके अधिकारों तथा विकास पर ध्यान दिया जा रहा है। भारत जैसे देश में शिक्षा को सामाजिक बदलाव का एक मजबूत माध्यम माना जाता है। खासकर लड़कियों की शिक्षा न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए जरूरी है, बल्कि पूरे समाज के विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। हालांकि शहरों में लड़कियों की शिक्षा में सुधार हुआ है, लेकिन गांवों में स्थिति अभी भी चिंताजनक है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष प्रधान सोच, सामाजिक परंपराएँ, आर्थिक समस्याएँ, सुविधाओं की कमी और सांस्कृतिक मान्यताएँ लड़कियों की शिक्षा में बड़ी बाधा बनती हैं। इसके कारण स्कूल में नामांकन तो बढ़ा है, लेकिन बीच में पढ़ाई छोड़ने की समस्या, शिक्षा की गुणवत्ता और उच्च शिक्षा तक पहुँच अभी भी सीमित बनी हुई है। ग्रामीण भारत में शिक्षा की शुरुआत घर, परिवार और समाज से ही हो जाती है। बच्चे सबसे पहले अपने घर के बड़े–बुजुर्गों से सीखते हैं और बाद में स्कूल में प्रवेश करते हैं। दादी–नानी की कहानियों और परिवार के अनुभवों से बच्चों को जीवन के कई महत्वपूर्ण मूल्य और संस्कार मिलते हैं। इस तरह शिक्षा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लगातार चलती रहती है। लेकिन यह स्थिति हर जगह समान नहीं होती। जिन परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता अधिक होती है, वहाँ इसका प्रभाव ज्यादा दिखता है। हमारे देश की अधिकतर आबादी गाँवों में रहती है, जहाँ कई बार शिक्षा के प्रति उदासीनता और जानकारी की कमी देखने को मिलती है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। आज एक ओर भारत को "विश्व गुरु" बनाने की बात हो रही है, वहीं दूसरी ओर कई गाँवों में पर्याप्त स्कूल और अच्छी शिक्षा की कमी है। कुछ जगहों पर तो स्कूल ही नहीं हैं, जिसके कारण छोटे बच्चों को पढ़ाई के लिए दूर–दूर तक पैदल जाना पड़ता है। उन्हें हर मौसम में कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। फिर भी कई बच्चे शुरुआती कक्षाओं की पढ़ाई ठीक से नहीं कर पाते। शिक्षा की कमी और जागरूकता के अभाव में बहुत से बच्चे पढ़ाई छोड़कर खेतों में काम करने या मजदूरी करने लगते हैं, ताकि अपने परिवार की मदद कर सकें। कुछ बच्चे शहरों की ओर भी पलायन कर जाते हैं। लड़कियों की स्थिति इससे भी ज्यादा कठिन है। कई परिवार अपनी बेटियों को घर से बाहर पढ़ने भेजना सही नहीं समझते, और अगर आर्थिक समस्या हो तो लड़कों को ही प्राथमिकता दी जाती है। इस कारण लड़कियाँ शिक्षा से पीछे रह जाती हैं। आज भी समाज में परंपराएँ और पितृसत्तात्मक सोच मजबूत है, जहाँ पुरुषों को ज्यादा महत्व दिया जाता है। इसका असर शिक्षा पर भी पड़ता है, क्योंकि कई परिवार लड़कियों की पढ़ाई को जरूरी नहीं मानते। कुछ लोग तो यह भी सोचते हैं कि लड़कियों को पढ़ाने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा, जिससे उनकी संभावनाओं को सीमित कर दिया जाता है। ऐसे लोग अक्सर कल्पना चावला, प्रतिभा पाटिल और इंदिरा गांधी जैसी सफल महिलाओं की उपलब्धियों को नजरअंदाज कर देते हैं। वे यह समझ नहीं पाते कि यदि घर का एक पुरुष पढ़ता है तो केवल वही शिक्षित होता है, लेकिन जब एक महिला शिक्षित होती है तो उसके साथ दो परिवारों का विकास होता है। इसी बात को ब्रिघम यंग ने भी कहा है कि एक पुरुष को शिक्षित करने से केवल एक व्यक्ति शिक्षित होता है, जबकि एक महिला को शिक्षित करने से पूरी पीढ़ी शिक्षित होती है। इसके बावजूद, परंपराएं, रूढ़िवादी सोच, अज्ञानता, उदासीनता, गरीबी और शिक्षा के प्रति लापरवाही जैसी समस्याएं आज भी ग्रामीण भारत में मौजूद हैं, जिससे लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

- ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।

- बालिका शिक्षा में आने वाली सामाजिक और आर्थिक बाधाओं का अध्ययन करना।
- सरकारी योजनाओं और नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

बालिका शिक्षा की ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

भारत में बालिका शिक्षा का विकास एक जटिल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया रही है, जो धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और पितृसत्तात्मक संरचनाओं से प्रभावित रही है। वैदिक काल में कुछ महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला था। गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियाँ वेद और दर्शन में निपुण थीं। हालांकि, गुरुकुल व्यवस्था में अधिकांशतः पुरुषों को ही शिक्षा दी जाती थी और बालिकाओं की शिक्षा सीमित वर्ग तक ही सीमित थी और मध्यकालीन काल समय में बालिकाओं की शिक्षा में गिरावट आई। मुगल काल और सामंतवादी व्यवस्था के कारण महिलाओं की शिक्षा और सीमित हो गई। पर्दा प्रथा, बाल विवाह और धार्मिक रूढ़ियाँ शिक्षा में बड़ी बाधा बनीं। इसके बाद ब्रिटिश काल और सुधार आंदोलन के 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार आंदोलनों के कारण बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिला। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए। इस दौरान मिशनरी और सरकारी स्कूलों में लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था शुरू हुई, लेकिन समाज में विरोध बना रहा। स्वतंत्रता के बाद भारत में संविधान ने शिक्षा को मौलिक अधिकार माना और लैंगिक समानता को स्वीकार किया। विभिन्न आयोगों ने भी बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने पर जोर दिया, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक मान्यताएं, आर्थिक समस्याएं और पितृसत्तात्मक सोच आज भी शिक्षा के मार्ग में बाधा बनी हुई हैं।

वर्तमान परिदृश्य में बालिका शिक्षा की स्थिति

"किसी भी देश की स्थिति वहाँ की महिलाओं की स्थिति देखकर समझी जा सकती है"
जवाहरलाल नेहरू का यह कथन आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है।

- किसी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। पुरुष और महिला दोनों समाज के दो पहियों की तरह हैं, जो मिलकर विकास को आगे बढ़ाते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि दोनों को शिक्षा और अन्य सभी क्षेत्रों में समान अवसर मिलें। यदि किसी एक वर्ग को पीछे रखा जाएगा, तो समाज की प्रगति संभव नहीं हो पाएगी।
- लेकिन वास्तविक स्थिति इससे अलग दिखाई देती है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में महिला साक्षरता दर 64.46 है, जबकि पुरुषों की साक्षरता दर 82.14 है। यह अंतर दर्शाता है कि महिलाएँ अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में पीछे हैं। राजस्थान और बिहार जैसे राज्यों में महिला साक्षरता दर और भी कम है। कुल साक्षरता दर की तुलना में भी महिलाओं की स्थिति कमजोर है।
- इसके अलावा, बहुत कम लड़कियों को स्कूल में दाखिला मिलता है और जो जाती भी हैं, उनमें से कई बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती हैं। सामाजिक रूढ़ियों और पारंपरिक सोच के कारण भी लड़कियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। युवतियों में बेरोजगारी दर भी युवकों की तुलना में अधिक है। कई रिपोर्टों के अनुसार, 15 से 18 वर्ष की बड़ी संख्या में लड़कियाँ स्कूल से बाहर हैं और घरेलू कामों या अन्य कार्यों में लगी रहती हैं।
- भारत में आज भी करोड़ों महिलाएँ ऐसी हैं जो पढ़–लिख नहीं सकतीं, और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी अधिक गंभीर है। हालांकि, वर्तमान समय में लड़कियों को विभिन्न क्षेत्रों जैसे कला, विज्ञान, गृह–विज्ञान, शिल्प और संगीत की शिक्षा के अवसर मिल रहे हैं। मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में भी उनकी संख्या लगातार बढ़ रही है।

- शिक्षा के प्रसार से बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों में कमी आई है। आज महिलाएँ उच्च शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे IAS, IPS में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं, जिससे यह साबित होता है कि वे किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं। भारतीय संविधान की धारा 15 भी यह सुनिश्चित करती है कि महिला और पुरुष के बीच किसी प्रकार का भेदभाव न किया जाए।

साहित्य सर्वेक्षण :–

इस शोधपत्र को तैयार करने के लिए विभिन्न लेखों और अध्ययनों का अध्ययन किया गया है।

- **साहू, संजुक्ता,** ने अपने लेख **"भारत में लड़कियों की शिक्षाः स्थिति और चुनौतियाँ"** में बताया है कि स्कूलों की जिम्मेदारी केवल पढ़ाई तक सीमित नहीं है, बल्कि वे बालिकाओं को भविष्य के जीवन में निभाई जाने वाली भूमिकाओं के लिए भी तैयार करते हैं।
- **शर्मा, डॉ ओउम प्रकाश एवं दास, राम शरण,** ने **"ग्रामीण भारत में शिक्षा"** विषय पर अपने अध्ययन में उल्लेख किया है कि सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से विकास किया है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण स्कूलों में आधारभूत सुविधाओं जैसे शौचालय, बिजली और सड़कों में सुधार हुआ है। हालांकि, अभी भी शिक्षकों की कमी, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कंप्यूटर और पक्के भवनों जैसी सुविधाओं का अभाव है, जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए आवश्यक हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में और अधिक सुधार की आवश्यकता है।
- **चड्ढ़ा, डॉ अनुप्रिया** ने अपने लेख **"अच्छे शिक्षकों के बिना शिक्षा की गुणवत्ता संभव नहीं"** में जोर दिया है कि स्कूलों में ऐसे शिक्षक होने चाहिए जो शिक्षित, प्रशिक्षित, प्रेरणादायक और पेशेवर हों, ताकि छात्रों को बेहतर शिक्षा मिल सके।
- **जोशी, प्रमोद** ने **"ग्रामीण शिक्षा के लिए चाहिए सामाजिक क्रांति"** में बताया है कि पिछले कुछ वर्षों में हर गांव में स्कूल खोलने और **मिड–डे मील** जैसी योजनाओं के कारण बच्चों की स्कूल तक पहुंच बढ़ी है। लेकिन कई स्थानों पर बहुत छोटे स्कूल स्थापित हो गए हैं, जहां छात्रों की संख्या बहुत कम है। नई शिक्षा नीति के तहत छोटे स्कूलों को मिलाकर बड़े स्कूल कॉम्प्लेक्स बनाने का सुझाव दिया गया है। हालांकि, इससे कुछ बच्चों के लिए दूरी बढ़ने के कारण स्कूल जाना कठिन भी हो गया है।

सरकार द्वारा वर्तमान में बालिकाओं के लिए चलायी जा रही योजनाएँ

वर्तमान समय में सरकार द्वारा बालिकाओं की शिक्षा, सुरक्षा और सशक्तिकरण के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

- **बालिका समृद्धि योजना (1997)** – का उद्देश्य समाज में बालिकाओं के प्रति नकारात्मक सोच को बदलना, उनके जन्म को प्रोत्साहित करना, शिक्षा को बढ़ावा देना और बाल विवाह को रोकना है।
- **सीबीएसई मेरिट स्कॉलरशिप योजना** – इस योजना की शुरुआत 2006 में हुई, जिसे 2012 में औपचारिक रूप दिया गया। इसका उद्देश्य देशभर में बालिकाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना है।
- **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना** – 22 जनवरी 2015 को शुरू की गई, जिसका लक्ष्य बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना और घटते लिंगानुपात में सुधार करना है। साथ ही यह योजना कन्या भ्रूण हत्या जैसे अपराधों को रोकने पर भी जोर देती है।

- **सुकन्या समृद्धि योजना –** जो इसी अभियान का हिस्सा है, बालिकाओं की शिक्षा और भविष्य की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई है। यह खासतौर पर उन परिवारों के लिए मददगार है जो अपनी बेटियों की पढ़ाई का खर्च उठाने में सक्षम नहीं हैं।
- **प्रगति स्कॉलरशिप (AICTE, 2014)** – के तहत हर साल हजारों छात्राओं को तकनीकी शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

इन सभी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य बालिकाओं को शिक्षित, आत्मनिर्भर और सशक्त बनाना है, ताकि वे समाज के विकास में बराबरी से योगदान दे सकें।

चुनौतियां और बाधाएं – बालिका शिक्षा के क्षेत्र में काफी सुधार हुआ है, लेकिन इसके बावजूद समाज में अब भी कई तरह की समस्याएँ और चुनौतियाँ मौजूद हैं।

- **सामाजिक बाधाएँ और पितृसत्तात्मक सोच :–** भारत के कई ग्रामीण इलाकों में आज भी लड़कों की पढ़ाई को लड़कियों से ज्यादा महत्व दिया जाता है। इसका कारण यह पारंपरिक सोच है कि लड़के भविष्य में परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी संभालेंगे, इसलिए उनकी शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है।
- **कम उम्र में विवाह :–** भारतीय समाज में लड़कियों की जल्दी शादी कर दी जाती है, जिससे उनकी पढ़ाई बीच में ही रुक जाती है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की शादी की उम्र शहरों की तुलना में कम होती है, जिससे वे माध्यमिक या उच्च शिक्षा पूरी नहीं कर पातीं।
- **सुरक्षा से जुड़ी चिंताएँ :–** माता–पिता अपनी बेटियों की सुरक्षा को लेकर चिंतित रहते हैं, विशेषकर तब जब स्कूल दूर होते हैं। रास्ते में सुरक्षा की समस्या के डर से कई परिवार लड़कियों को स्कूल भेजने के बजाय घर पर ही रखना बेहतर समझते हैं।
- **आर्थिक समस्याएँ :–** ग्रामीण क्षेत्रों में कई परिवार आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं, इसलिए वे बच्चों की पढ़ाई से ज्यादा काम को प्राथमिकता देते हैं। ऐसे में लड़कियों को घरेलू काम या परिवार की आय बढ़ाने में लगा दिया जाता है, जिससे उनकी शिक्षा प्रभावित होती है।
- **शिक्षा का खर्च :–** हालांकि प्राथमिक शिक्षा मुफ्त होती है, लेकिन माध्यमिक स्तर पर वर्दी, किताबें और आने–जाने का खर्च जुड़ जाता है। ये खर्च गरीब परिवारों को लड़कियों को स्कूल भेजने से रोकते हैं।
- **बुनियादी सुविधाओं की कमी :–** कई ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक स्कूल दूर होते हैं या उपलब्ध ही नहीं होते। लंबी दूरी तय करना लड़कियों के लिए मुश्किल होता है, जिससे उनकी पढ़ाई में बाधा आती है।
- **स्वच्छता और शौचालय की कमी :–** स्कूलों में शौचालय और साफ–सफाई की कमी, खासकर लड़कियों के लिए, एक बड़ी समस्या है। मासिक धर्म के दौरान असुविधा और शर्मिंदगी के कारण कई लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती हैं।
- **शिक्षकों की कमी और गुणवत्ता :–** ग्रामीण स्कूलों में योग्य शिक्षकों की कमी होती है, विशेषकर महिला शिक्षकों की। इससे शिक्षा की गुणवत्ता कम होती है और लड़कियों को प्रेरणा देने वाले रोल मॉडल भी कम मिलते हैं।
- **उपस्थिति और ड्रॉपआउट की समस्या :–** प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का नामांकन अच्छा है, लेकिन आगे की कक्षाओं में उनकी पढ़ाई छूट जाती है। इसके पीछे घरेलू जिम्मेदारियाँ, आर्थिक कठिनाइयाँ,

परिवहन की समस्या और सामाजिक सोच जिम्मेदार हैं। आँकड़ों के अनुसार, लड़कियों की साक्षरता दर लड़कों से कम है और माध्यमिक स्तर पर उनका ड्रॉपआउट प्रतिशत काफी अधिक है।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बालिका के समग्र विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को प्रगति के अवसर प्रदान करती है, इसलिए बालिकाओं के लिए भी शिक्षा अनिवार्य बन जाती है। हालांकि, विभिन्न सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों के कारण आज भी अनेक बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना कर रही हैं। फिर भी, पिछले कुछ वर्षों में भारत में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। बड़े–बड़े शिक्षण संस्थानों में बालिकाओं का प्रदर्शन बेहतर रहा है और वे कई बार बालकों से आगे भी रही हैं, जो सकारात्मक परिवर्तन का संकेत है।

इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी बालिका शिक्षा की स्थिति में सुधार देखने को मिल रहा है। लेकिन इसे और मजबूत बनाने के लिए समाज की सोच में परिवर्तन, रूढ़िवादी विचारधारा का त्याग, बेहतर शैक्षणिक सुविधाएँ, योग्य शिक्षकों की उपलब्धता तथा शिक्षा को रोजगार से जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। अतः यह कहा जा सकता है कि बालिकाओं की शिक्षा में सुधार लाने के लिए उनका शिक्षित होना सबसे जरूरी है। इससे समाज में बालक और बालिकाओं के बीच की असमानता को कम किया जा सकता है और बालिकाएँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक बन सकती हैं।

सुझाव–

- सरकार की योजनाओं और उनसे जुड़ी जागरूकता को ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के माता–पिता तक प्रभावी ढंग से पहुँचाया जाना चाहिए।
- ग्रामीण परिवारों को प्रेरित किया जाए ताकि वे बालिका शिक्षा के महत्व को समझें और साक्षरता दर बढ़ाने में सहयोग करें।
- समाज में मौजूद रूढ़िवादी सोच को खत्म कर लड़के और लड़कियों दोनों को समान और समावेशी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित पुरानी परंपराओं और पितृसत्तात्मक सोच में बदलाव लाकर बालिकाओं को लड़कों के बराबर महत्व दिया जाना चाहिए।
- बालिकाओं पर सामाजिक परंपराएँ थोपने के बजाय उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- उन माता–पिता को जागरूक करना आवश्यक है जो अपनी बेटियों को घर या गाँव से बाहर पढ़ने के लिए भेजने में संकोच करते हैं।

सन्दर्भ सुची :–

1 शर्मा, ओउम प्रकाश एवं दास, राम शरण, (2018), ''ग्रामीण भारत में शिक्षा'', कुरूक्षेत्र, वर्ष–64, अंक–2, प्रकाशन विभाग सुचना और प्रसारण मंत्रालय सुचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0–36

2 चड्ढ़ा, अनुप्रिया, (2019), ''अच्छे शिक्षकों के बिना शिक्षा की गुणवत्ता संभव नहीं'', कुरूक्षेत्र, वर्ष–66, अंक–1, सुचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0–15,

3 जोशी, प्रमोद, (2019), ''ग्रामीण शिक्षा के लिए चाहिए सामाजिक क्रांति'', कुरूक्षेत्र, वर्ष–66, अंक–1, सुचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0–45

4 साहू, संजुक्ता, 2016, ''भारत में बालिका शिक्षाः स्थिति और चुनौतियाँ'' https://www.researchgate.net/publication/344713737_Girls'_Education_in_India_Status_and_Challenges

5 सिंह, राजेन्द्र, ''ग्रामिण परिवेश में बालिका शिशु की प्रस्थिति'', 2001, अप्रकाशित लेख (शोधगंगा) पृ0 सं0 1–2

6 शर्मा, विद्या विपुल, 2020 ''बालिका शिक्षा–एक दार्शनिक परिशीलन'' (भारतीय परिप्रेक्ष्य में) अप्रकाशित लेख शोध गंगा, पृ0सं0–44

7 देवी, ममता, 2022, ''ग्रामीण परिवेश में बच्चों की स्कूली शिक्षा'' https://www.maitreyi.ac.in/uploads/research/Samvedna/issues/vol4/issue1/hindisection/H4.pdf

8 https://www.yourarticlelibrary.com/education/womens-education/womens-education-in-ancient-india/63492

9 https://www-indianetzone-com.translate.goog/women_education_medieval_india?_x_tr_sl=en&_x_tr_tl=hi&_x_tr_hl=hi&_x_tr_pto=tc

10 https://www.yourarticlelibrary.com/women/status-of-women-during-british-period/47393

11 http://www.aryavartsvs.org.in/uploaded_book/77.%20DR.%20Jainuwal%20Avadeen.pdf

12 https://samarsaleel.com/girls-education-in-rural-areas-of india/427492

13 https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/women-education

https://socialsciencejournal.in/assets/archives/2022/vol8issue1/8-1-12-125.pdf

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

CHILD LABOUR: EXPLOITATION OF NATIONAL WEALTH AND CHALLENGES TO SUSTAINABLE DEVELOPMENT-A SOCAL, LEGAL AND POLICY ANALYSIS

Mrs. Ankita Jaiswal
Research Scholar, Sociology
Jagatpur PG College Jagatpur, Varanasi
E-mail Address: ankitawishes25@gmail.com
Prof. Jyoti Mishra
Jagatpur PG College Jagatpur, Varanasi
Affiliation Centre: Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi

ABSTRACT

Child labor is still a serious problem deeply rooted in the social and economic fabric of many developing countries including India. This problem is not only a violation of the rights of children, but it is also a symbol of the destruction of a nation's valuable human asset. This training paper analyzes the problem of child labor from social, legal, and policy perspectives, looking at its impact on national development, education, health, and social justice. The text explains how economic inequality, illiteracy, family pressure and weak laws perpetuate the problem of child labour. Review of constitutional provisions, labor laws and international conventions (such as ILO conventions) related to prohibition of child labor in India is an integral part of th is term. Additionally, it also reviews the progress of efforts to eliminate child labor under the World Sustainable Development Goal (SDG 8.7). Ultimately, it concludes that the total eradication of child labor will not be possible unless children's education, social security and family livelihoods are placed at the center of policy making. It offers useful recommendations for policy makers, social workers and academia.

INTRODUCTION

Child labor is a pressing social, moral and legal challenge for the world, especially in developing countries, where economic inequality, poverty and
lack of education make the problem even more complex. In a country like India, where the youth population is considered to be the nation's biggest asset, the widespread prevalence of child labor is a symbol of depletion of national resources. This not only hampers the physical, mental and intellectual development of children, but also creates serious obstacles in the sustainable and inclusive development of the society. The protection of the rights of children is

guaranteed under Articles 21A, 24 and 39 (e) and (f) of the Indian Constitution. Along with this, the Child Labor (Prohibition and Regulation) Act, 1986 and Child Welfare Act, 2016 have been enacted to protect children from hazardous work and to motivate them towards education. Apart from this, India is also a party to various codes of the International Labor Organization (ILO) which are helpful in freeing children from slavery. Child labor is not only a legal or social issue, it is also a moral dilemma that limits the capabilities of future generations. From a global perspective, this problem is contrary to the spirit of the Sustainable Development Goals (SDG-8.7), which pledge to eliminate child labor by 2025. This paper critically analyzes the problem of child labor by placing it in a broader social, legal and policy frame. Its objective is to make it clear that unless the rights of child laborers to education, health, social security and dignity are not violated, the real progress of the nation will remain incomplete.

OBJECTIVES OF THE STUDY: -

The main objective of this term is to understand the problem of child labor from a multidimensional perspective and to analyze it socially, legally and policy. Its specific objectives are as follows:

1. To study the current prevalence, causes and effects of child labor in India.
2. To consider child labor as a national asset.
3. To evaluate the legal protection of child rights under the Indian Constitution, labor laws and international codes.
4. To review government schemes, policies and their impacts related to elimination of child labour.
5. To analyze India's commitment and progress towards eliminating child labor in the context of Sustainable Development Goal (SDG-8.7).
6. To critically analyze the role of policy-makers, courts and various stakeholders of the society.
7. To present practical suggestions and policy recommendations for the eradication of child labour.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY: -

For a developing nation like India, the problem of child labor is not only a social and economic challenge, but it is also a symbol of the training of the future human capital of the country. When children are buried under the burden of manual labour, deprived of their basic rights to education, health and development, the overall progress of the nation suffers. Child labor is directly related to poverty, illiteracy, social inequality and lack of awareness.

Instead of considering child labor as a humanitarian issue, this study presents it as a loss of national wealth, which impacts the Sustainable Development Goals (SDGs), particularly SDG 8.7, which calls for working towards eliminating all forms of child labour. The significance of this term lies in the fact that it provides a multi-dimensional view — social, legal and policy — and makes it clear that the problem of child labor cannot be addressed by the creation of laws, but by their effective implementation, social change and universal access to education. Can be removed. The study provides practical suggestions to policy-makers, academics, social activists, and the judiciary to take more effective steps towards the elimination of child labour.

SCOPE AND LIMITATIONS OF THE STUDY: -

This course analyzes the problem of child labor from social, legal and policy perspectives and focuses on its impacts and solutions in India. Although the word takes a comprehensive approach, it still has some limitations as follows:

SCOPE: -

1. The geographical scope of the study is limited to India, with a particular focus on the prevalence of child labor in both rural and urban areas.
2. This term primarily focuses on children under the age of 14 years, as defined in the definition of child labor in Indian law.
3. In this, major Indian laws related to child labor such as Child Labor (Prohibition and Regulation) Act 1986, Labor Code 2020, Right to Compulsory Education Act 2009 etc. have been reviewed.
4. This study reviews efforts to eliminate child labor in the context of the Sustainable Development Goal (SDG 8.7).

LIMITATION

1. It is based on legitimate sources of study (books, training papers, government reports, laws, etc.); Direct interviews or surveys are not included.
2. Different types of child labor such as bonded labour, domestic work, hazardous labor etc. have been specifically defined in a limited manner.
3. This study is limited to the Indian perspective; International comparative studies are limited.
4. As some of the latest policy pills or statistics are not published, one may remain updated with the latest information for some time.

RESEARCH METHODOLOGY: -

In this study the problem of child labor has been analyzed from social, legal and policy perspectives. The nature of the study is qualitative and it is based on descriptive and analytical research methods.

TYPE OF RESEARCH:

It is desk research, in which information received from interested sources is consolidated and analyzed.

It has been prepared from the perspectives of Socio-Legal Study, which focuses on the interrelationship of law, society and policy.

SOURCES OF DATA

(A) SECONDARY SOURCES: -

- **Legal Sources:** Indian Constitution, Child Labor Prohibition Act 1986, Labor Code 2020, RTE Act 2009, National Child Policy.
- **Judicial Judgments:** Major judgments related to child labor of the Supreme Court and various High Courts.
- **Government reports:** National Center for Protection of Child Rights (NCPCR), Ministry of Labor and Employment, NITI Aayog.
- **International sources:** ILO reports, UNICEF documents, United Nations Sustainable Development Goals (SDG 8.7).
- **Educational materials:** Published papers, books, journals, news articles and digital articles on relevant topics.

ANALYTICAL TOOLS: -

- Content Analysis: Analysis of various documents, laws and policies.
- Comparative study: Comparison between current laws and international standards.
- Doctrinal and non-doctrinal approach: Study in light of social impacts,

policy implications and policy implications.

PROCESS OF STUDY: -

- Topic selection → Literature review → Legal document compilation → Analysis of underlying documents → Formulating conclusions and suggestions.

LIMITATIONS: -

- Direct field observations and interviews with children are not part of this study.
- The research depends on the latest availability of data.

REVIEW OF LITERATURE: -

Child labor is a multidimensional social problem, on which many sociologists, educationists, human rights activists and intellectuals have written from time to time. This chapter presents a review of key literature focusing on the social, legal, economic and policy aspects of child labour.

1. **Child Labor from Social Perspective:**

- M.K. Gandhi (Harijan, 1933): Gandhiji denounced the moral degradation and social injustice of child labour. According to him, children should be given an environment of education and culture, and not of labour.
- Myron Weiner (1991), "The Child and the State in India": In this book the author has argued that the main reason for the high rate of child labor in India is the state's indifference towards primary education.

2. **Legal and Human Rights Perspective:**

- Dr. Asha Bajpai (2003), "Child Rights in India": This book extensively discusses the rights of children and the role of India's constitutional provisions, laws and courts for their protection.
- ILO Convention 138 and 182: These international documents recommend minimum age and prohibition of child labor in hazardous work. India has ratified these agreements, but their full implementation still remains a challenge.

3. **Policy-based analysis:**

- UNICEF Reports (2016, 2020): The reports state that child labor increases due to poverty, social inequality, lack of education and labor market inflexibility. Also, the need for strong policies has been expressed to achieve Sustainable Development Goal 8.7.
- National Child Labor Project (NCLP): This is a flagship scheme of the Government of India, which aims to ensure the rehabilitation and education of child labourers. A review of this scheme shows that there are shortcomings in the implementation of the scheme at many levels.

4. **Role of Courts:**

- M. C. Mehta vs. State of Tamil Nadu (AIR 1997 SC 699): In this landmark decision, the Supreme Court gave specific directions for keeping children away from hazardous industries and their rehabilitation.
- In various cases of Bachpan Bachao Andolan, the courts have directed the government to identify, rescue, rehabilitate child laborers and establish special courts for them.

5. **Academic Research and Articles**

- Dr. Vandana Saxena (2017), "Legal Framework of Child Labor in India": The document compares Indian laws with international standards and recommends that,

beyond legal provisions, there is a need for effective implementation and social change.

- National Human Rights Commission (NHRC) Reports: NHRC reports repeatedly make it clear that the problem of child labor cannot be solved by laws alone, rather it is necessary to give priority to comprehensive social engagement and education.

FINDING AND DISCUSSION IN THE LIGHT OF OBJECTIVES: -

This study focused towards understanding the social, legal and policy complexities of child labor and determining effective suggestions for its eradication. The findings given below are presented in the context of the main objectives:

1. Evaluation of the current situation of child labor:

The study revealed that child labor is still prevalent in many rural and urban areas of India. This problem is particularly acute in agriculture, construction, domestic work and cottage industries. The situation has become more serious after COVID-19, which has forced children from poor families to do labor.

2. **Effect of social structure:**

Caste discrimination, gender inequality and poverty are the main factors promoting child labour. Children belonging to Scheduled Castes, Tribes and minority communities are deprived of education and put to work at low wages.

3. **Effectiveness of the legal framework:**

Although Child Labor (Prohibition and Regulation) Act, 1986 and Social Security Act 2016 exist in India, their implementation was found to be weak. The apathy and lack of coordination of the agencies concerned in matters of identification, rescue and rehabilitation of child laborers was clearly revealed.

4. **Relationship between child labor and education:**

Child labor and education are interconnected. The study found that where the quality of education improves and there is effective implementation of government schemes (e.g. mid-day meals, Sarva Shiksha Abhiyan), there is a significant reduction in child labour.

5. Policy Analysis and Challenges:

Implementation of government schemes like National Child Labor Project (NCLP), Right to Education (RTE) Act etc. was effective even in limited areas. There is no system of sustained monitoring and community participation.

CONCLUSION

- Child labor in India is not an economic or legal problem, rather it is a socio-cultural problem.

- There is a strong need to strengthen the existing laws and policies and their effective implementation.
- Total eradication of child labor is possible only when society, government and citizens come together and adopt a coordinated strategy of education, awareness and rehabilitation.

RECOMMENDATIONS: -

On the basis of this study, the following suggestions are being presented, which can be useful towards the elimination of child labor in India, protection of children's rights and achievement of Sustainable Development Goals (SDG 8.7 and 16.2):

1. Universalization of education and Quality Implementation:

- Free and Compulsory Education Act (RTE) should be strictly implemented in rural and urban slum areas.
- Adequate arrangements should be made for mid-day meals, scholarship and transportation facilities in schools so that children remain in school.

2. Community participation to monitor child labour:

- Child Labor Monitoring Committees should be formed by comprising of village panchayat, Anganwadi workers, school teachers and local NGOs.
- Community reporting system should be strengthened so that child labor is reported promptly and action is taken.

3. Expansion of rehabilitation and counseling services:

- Proper rehabilitation, skill development training, psycho-social counseling and education should be provided to the rescued child labourers.
- Child Labor Rehabilitation Centers should be set up in every district.

4. Strict legal action and punishment system:

- Ensure prompt and effective legal action against child labor perpetrators.
- The number of labor inspectors appointed should be increased and their responsibilities should be fixed.

5. Poverty alleviation and family income status:

The economic well-being of parents should be improved through MNREGA, Swar Jagar Yojana and women empowerment programs so that they do not hesitate to send their children to work.

6. Digital Literacy and Child-Awareness Campaigns:

- Awareness campaigns against child labor should be conducted through TV, radio, social media and at school level.
- Children should be made aware of their rights.

7. **Policy Reforms and Continuous Monitoring:**

- The National Child Labor Policy 1987 should be reviewed and new socio-economic contexts should be included in it.
- Adoption of innovations by collaborating with international organizations like UNICEF, ILO and UNESCO.

CONCLUSION

- Child labor not only violates the personal development and rights of children, it is also a serious obstacle to national progress, human resource development and the achievement of the Sustainable Development Goals. In a developing country like India, where a large section of the population is struggling with poverty, illiteracy and inequality, the prevalence of child labor raises questions on social, economic and cultural values. Through this word it became clear that child labor is not a social evil, but a multi-layered problem, which also includes other complexities like malnutrition, illiteracy, training, juvenile delinquency, human trafficking and child sexual violence. This issue also points to policy failures and weak implementation mechanisms. Despite the fundamental rights of children enshrined in the Constitution, 'Child Labor (Prohibition and Regulation) Act', Right to Education Act (RTE Act), Juvenile Justice Act (JJ Act) and other provisions, effective change has not been achieved at the ground level. This clearly shows that not only are the measures sufficient, but their effective implementation, community awareness and structural reforms are also required. To conclude from this

statement, it can be said that if India is to be made a strong, educated and inclusive nation then eradication of child labor should be a top priority. By ensuring every child's education, security and the guarantees of a dignified life, we can protect not only the capital of the nation but also the entire nation.

REFERENCES:-

- Government of India. (2021). Annual Report 2020-21, Ministry of Labour and Employment. New Delhi.
- World Vision India. (2019). Understanding the Push and Pull Factors of Child Labour: A Ground- Level Study.
- Srivastava, M. (2021). Policy Challenges in Eradicating Child Labour in India. Economic and Political Weekly, 56(9), 14–18.
- Tripathi, S. (2020). Legal Framework and Reality of Child Labour in India. Indian Journal of Human Rights Law, 6(2), 55–68.
- UNICEF India. (2023). Ending Child Labour in India: A Multi-Sectoral Policy Approach. New Delhi, UNICEF.
- United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development (SDG Goal 8.7).
- Nanda, Pushpa. (2022).Child Labour and Indian Society: A Sociological Perspective. Bharatiya Samajshastra Patrika, Vol. 18, Issue 4, pp. 42–50.
- Jain, Ravindra Kumar. (2019).Child Labour and the Future of India. New Delhi: Lokniti Prakashan.
- Save the Children India. (2020). Child Labour in India: Causes and Impact on Education.
- National Commission for Protection of Child Rights (NCPCR). (2022). Status of Child Labour in India. New Delhi, Government of India.
- International Labour Organization (ILO). (2021). Child Labour: Global Estimates 2020, trends and the road forward. Geneva: ILO and UNICEF.
- (Right to Education Act), 2009
- Child Labor (Prohibition and Regulation) Prevention Act, 2016, Government of India, Ministry of Labor and Employment.
- Constitution of India – 1950, Articles 21A, 24, 39(e) and 45.
- The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

श्रीमद्भगवद्गीता के आत्मतत्त्व की अवधारणा

डॉ0 वागीश मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर
सर्वोदय विद्यापीठ पी0जी0 कालेज
सलोन, रायबरेली

सारांश–

आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक इन त्रिविध दुःखों से पीड़ित मनुष्यों के समक्ष प्रायः एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या जिस प्रकार जगत् के दृश्यमान सभी पदार्थ नश्वर हैं, अनित्य हैं, क्या मनुष्य भी इसी प्रकार अनित्य है, क्या उसके दृश्यमान शरीरादि रूप के नष्ट हो जाने पर कुछ भी नहीं बचता? इसी के उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता, वह नष्ट न होने वाला अनश्वर या नित्य तत्त्व मनुष्य का अपना वास्तविक रूप है। यही आत्मा है। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य मृत्यु के बाद भी रहता है, शरीर से नहीं, स्वरूप से। आत्मा शब्द स्वरूप का ही वाचक है। मनुष्य का यह स्वरूप अर्थात् उसकी आत्मा नित्य और अविनाशी है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मतत्त्व के विषय में उपदेश दिया है।

कूटशब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीकृष्ण, अर्जुन, आत्मतत्त्व, उपदेश

आत्मतत्त्व–

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह शरीरी (आत्मा) अविनाशी है। यह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। इस अविनाशी तत्त्व का विनाश कोई भी नहीं कर सकता है।[1] जो मनुष्य इसको मारने वाला मानता है वह ठीक नहीं जानता क्योंकि शरीरी में कर्तृत्व का अभाव है और जो मनुष्य इसको मरा मानता है वह भी ठीक नहीं जानता क्योंकि जैसे यह शरीरी किसी को मारने वाला नहीं है, ऐसे ही वह मरने वाला भी नहीं है क्योंकि इसमें कभी कोई विकृति नहीं आती। जिसमें विकृति आती है वही मर सकता है। वस्तुतः शरीरी को मारने वाला और मरने वाला वे दोनों ये तथ्य नहीं जानते हैं कि यह शरीरी न मारता है और न मारा जाता है। यह निर्विकार रूप से ज्यों का त्यों रहने वाला है अतः इस शरीरी को लेकर शोक नहीं करना चाहिए।[2]

आत्मा की निर्विकारता एवं शरीर की निःसारता का वर्णन करते हुए भगवान् ने एक दृष्टान्त दिया है कि जैसे मनुष्य पुराने एवं जीर्ण–शीर्ण कपड़ों को छोड़कर दूसरे नये कपड़ों को धारण करता है ऐसे ही यह देही (आत्मा) पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीरों को धारण करता है। पुराना शरीर छोड़ने को मरना (Death) कहते हैं और नया शरीर धारण करने को जन्म (Birth) लेना कहते हैं।[3] वस्तुतः आयु प्रतिरक्षण समाप्त हो रही है अर्थात् शरीर प्रतिक्षण जीर्ण हो रहा है, प्रतिक्षण मर रहा है। यह एक क्षण भी स्थिर नहीं है। जैसे, जवान होने से बालकपन मर जाता है और वृद्ध होने से यौवन मर जाता है।

भगवान् आत्मा के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं–यह आत्मा न तो कभी जन्मता है, न कभी मरता है यह अज, नित्य, शाश्वत और पुराण है–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[4]

शरीर में छः प्रकार के रूपान्तर होते हैं।[5] वह माता के गर्भ से जन्म लेता है, कुछ काल तक रहता है, बढ़ता है, कुछ परिणाम उत्पन्न करता है, कुछ क्षीण होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है। किन्तु आत्मा इन छः रूपान्तरों से रहित हैं जिस प्रकार शरीर उत्पन्न होता है वैसे यह आत्मा कभी भी किसी भी समय में उत्पन्न नहीं होता, यह तो सदा से ही है भगवान् ने इ आत्मा को अपना अंश बताते हुए इसको सनातन कहा है।[6] यह आत्मा कभी मरता भी नहीं है मरता वही है जो पैदा होता है यह अविनाशी नित्य तत्त्व पैदा होकर फिर होने वाला नहीं है अर्थात् यह स्वतः सिद्ध निर्विकार है। आत्मा का कभी भी जन्म नहीं होता इसलिए भगवान् ने इसे अज कहा है। यह आत्मा नित्य–निरन्तर रहने वाला है, अतः इसका कभी अपक्षय नहीं होता, अपक्षय तो अनित्य वस्तु में होता है इसीलिए इसे नित्य कहा गया है। वह नित्य तत्त्व निरन्तर एकरूप रहने वाला है। इसमें अवस्था का परिवर्तन नहीं होता यह कभी बदलता नहीं है इसलिए यह शाश्वत है। यह अविनाशी तत्त्व अनादि है शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता अतः पुराण है।

गीता के अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है—"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" इसका अर्थ है कि प्रत्येक जीव में परमात्मा का अंश विद्यमान है। आत्मा शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वरूप है किंतु अज्ञान के कारण मनुष्य स्वयं को शरीर और संसार से जोड़ लेता है, जिससे मोह और दुःख उत्पन्न होते हैं। आत्मज्ञान के माध्यम से मनुष्य इस अज्ञान से मुक्त होकर परम शांति और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। आत्मतत्त्व की अवधारणा केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका व्यावहारिक महत्व भी है। गीता में आत्मज्ञान को कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का आधार माना गया है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि आत्मा अविनाशी है, तब वह सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय में समभाव बनाए रख सकता है। यही समत्व योग कहलाता है। आत्मतत्त्व का बोध मनुष्य को निष्काम कर्म की प्रेरणा देता है, क्योंकि वह कर्म के फल के प्रति आसक्त नहीं रहता। गीता में आत्मा को इंद्रियों, मन और बुद्धि से भी श्रेष्ठ बताया गया है। आत्मा ही शरीर को चेतना प्रदान करती है। जब आत्मा शरीर का त्याग करती है, तब शरीर निष्प्राण हो जाता है। इसलिए आत्मा को जीवन का मूल तत्त्व माना गया है। आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है और परमात्मा के साथ एकत्व का अनुभव करता है। अतः कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मतत्त्व की अवधारणा मानव जीवन को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करती है। यह मनुष्य को यह शिक्षा देती है कि वह स्वयं को केवल शरीर न माने, बल्कि अपने शाश्वत आत्मस्वरूप को पहचाने। आत्मज्ञान ही मोक्ष और जीवन की वास्तविक शांति का आधार है।

इस शरीरी को शस्त्रादि नहीं काट सकते क्योंकि ये प्राकृत शस्त्र वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकते जितने भी शस्त्र हैं वे सभी पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होते हैं। यह पृथ्वी तत्त्व इस शरीरी में किसी तरह का विकार पैदा नहीं कर सकता। अग्नि इस शरीरी को जला नहीं सकती क्योंकि अग्नि तत्त्व शरीरी में कोई विकृति उत्पन्न कर ही नहीं सकता। वायु इसको सुखा नहीं सकती, क्योंकि वायु तत्त्व में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि इसमें कोई विकार पैदा कर सके। जल तत्त्व इसको गीला नहीं कर सकता क्योंकि जल में इतना सामर्थ्य है ही नहीं।[7] भगवान् ने पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) में से केवल चार महाभूतों की बात कही है कि ये पृथ्वी, जल, तेज, वायु इस शरीरी में किसी तरह की विकृति नहीं कर सकते परन्तु पाँचवे महाभूत आकाश की चर्चा नहीं की, कारण यह है कि आकाश में कोई क्रिया करने की शक्ति नहीं है क्योंकि आकाश तो इन चार महाभूतों को केवल अवकाश मात्र देता है और दूसरा कारण यह है कि पृथ्वी, जल, वायु, तेज ये चारों तत्त्व आकाश के अंश से ही उत्पन्न होते हैं और वे उसमें ही कोई विकार पैदा नहीं कर पाते तो आत्मा में क्या करेंगें क्योंकि आकाश को आत्मा से प्रादुर्भूत माना जाता है–आकाशः आत्मनः सम्भूतः।[8]

श्रीमद्भगवद्गीता में पञ्चमहाभूतों की चर्चा मानव शरीर, प्रकृति और आत्मा के संबंध को समझाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रूप में की गई है। भारतीय दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण भौतिक जगत पाँच मूल तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—से निर्मित है। इन्हें ही पञ्चमहाभूत कहा जाता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इन तत्त्वों को अपनी "अपरा प्रकृति" अर्थात जड़ प्रकृति का स्वरूप बताया है।

गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं—

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।"

अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये मेरी आठ प्रकार की विभाजित प्रकृतियाँ हैं। यहाँ पञ्चमहाभूतों को सृष्टि और शरीर की आधारभूत संरचना माना गया है। पृथ्वी तत्त्व से शरीर की स्थूलता और दृढ़ता, जल से तरलता और जीवन-रस, अग्नि से ऊष्मा और पाचन शक्ति, वायु से प्राणशक्ति और गति तथा आकाश से शरीर में स्थान और ध्वनि की क्षमता उत्पन्न होती है।
गीता के अनुसार मानव शरीर नश्वर है क्योंकि यह पञ्चमहाभूतों से निर्मित है। शरीर का जन्म इन तत्त्वों के संयोग से होता है और मृत्यु के बाद यही तत्त्व पुनः प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर परिवर्तनशील और विनाशी है। गीता यह स्पष्ट करती है कि मनुष्य केवल शरीर नहीं है; उसके भीतर आत्मा नामक शाश्वत चेतना विद्यमान है। शरीर भौतिक तत्त्वों का संघात है, जबकि आत्मा चेतन, अविनाशी और नित्य सत्ता है।
द्वितीय अध्याय में गीता आत्मा और शरीर के भेद को अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आत्मा न शस्त्र से काटी जा सकती है, न अग्नि से जलाई जा सकती है, न जल से गीली की जा सकती है और न वायु से सुखाई जा सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा पञ्चमहाभूतों से परे और उनसे अप्रभावित है। शरीर पंचभौतिक है, इसलिए वह नाशवान है; किंतु आत्मा दिव्य और शाश्वत है।
गीता में शरीर को "क्षेत्र" और आत्मा को "क्षेत्रज्ञ" कहा गया है। शरीर कर्मों का क्षेत्र है, जबकि आत्मा उसका ज्ञाता और साक्षी है। जब आत्मा शरीर में निवास करती है, तब शरीर चेतन और सक्रिय रहता है; आत्मा के निकल जाने पर वही शरीर निष्प्राण हो जाता है। इस प्रकार आत्मा शरीर को चेतना प्रदान करती है, परंतु स्वयं शरीर के गुणों से बंधी नहीं होती।
गीता का यह सिद्धांत मनुष्य को आत्मबोध की ओर प्रेरित करता है। यदि मनुष्य स्वयं को केवल शरीर मानेगा, तो वह मोह, भय और दुःख में फँसा रहेगा; किंतु जब वह आत्मा के शाश्वत स्वरूप को समझेगा, तब जीवन में समत्व और आध्यात्मिक शांति प्राप्त करेगा। अतः गीता में पञ्चमहाभूतों की चर्चा केवल भौतिक सृष्टि का वर्णन नहीं, बल्कि शरीर और आत्मा के गूढ़ संबंध को समझाने का माध्यम है।

विभिन्न प्रकार के शस्त्रादि इस शरीरी में विकार उत्पन्न क्यों नहीं कर सकते इसके उत्तर में गीता कहती है–

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।[9]

शस्त्र इस शरीरी का छेदन नहीं कर सकते क्योंकि छेदनरूपी क्रिया शरीरी में प्रविष्ट नहीं हो सकती, अतएव इसे अच्छेद्य कहा गया है। शरीरी में दहन क्रिया का प्रवेश ही नहीं हो सकता, इसमें जलने की योग्यता नहीं है। इस कारण भगवान् ने इसे अदाह्य कहा है। जल इस शरीरी को गीला नहीं कर सकता, कारण कि इसमें गीला होने की योग्यता का अभाव है, इसलिए यह अक्लेद्य है। इस शरीरी का वायु से शोषण नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें शोषण क्रिया का प्रवेश नहीं होता अतः यह अशोष्य है। यह देही (आत्मा) सम्पूर्ण व्यक्ति, वस्तु, शरीर आदि में एकरूप से विराजमान है, व्याप्त है यह कहीं है और कहीं नहीं है ऐसा नहीं है, इसलिए इसे सर्वगत कहा गया है। यह शरीरी स्थिर स्वभाव वाला है अर्थात् इसमें कभी यहाँ और कभी वहाँ इस प्रकार आने–जाने की क्रिया नहीं है। इसलिए यह अचल है। यह शरीरी स्थाणु है अर्थात् इसमें हिलने की क्रिया नहीं है। यह क्रियारहित, परिवर्तन रहित तथा स्थायी स्वभाव वाला तत्त्व है। यह शरीरी अनादिकाल से है, यह किसी समय नहीं था ऐसा सम्भव नहीं है अतः यह सनातन है।

यह शरीरी दिखाई देता है? अथवा क्या यह चिन्तनीय है इसके उत्तर में गीता में कहा गया है–

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।[10]

तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर, संसार आदि स्थूल रूप से देखने में आता है वैसे यह शरीरी स्थल रूप से देखने में आने वाला नहीं है क्योंकि यह स्थूलसृष्टि से रहित है अतः यह अव्यक्त है। मन, बुद्धि आदि देखने में तो प्रत्यक्ष नहीं आते परन्तु चिन्तन में आते ही हैं अर्थात् ये सभी चिन्तन के विषय हैं। परन्तु यह शरीरी चिन्तन का विषय नहीं है क्योंकि यह सूक्ष्म सृष्टि से रहित है इसलिए इसके लिए अचिन्त्य पद का प्रयोग हुआ है। सबका कारण प्रकृति है, उस कारण भूत प्रकृति में भी विकृति होती है, परन्तु इस शरीरी में किसी भी प्रकार की विकृति नहीं होती क्योंकि यह कारणसृष्टि से रहित है अर्थात् अविकारी है। इस बात का समर्थन सांख्य दर्शन भी करता है, वहाँ भी पुरुष को किसी का न तो कारण बताया गया है और न ही किसी

का कार्य।[11] अन्य भारतीय दर्शनों में भी आत्मतत्त्व का वर्णन मिलता है, किंतु गीता का दृष्टिकोण अधिक समन्वयकारी और व्यापक माना जाता है। सांख्य दर्शन में पुरुष को शुद्ध चेतन आत्मा माना गया है, जो प्रकृति से भिन्न और निर्विकार है। वहाँ आत्मा केवल साक्षी है, जबकि गीता इस आत्मा को कर्मयोग से भी जोड़ती है। योग दर्शन में आत्मा की प्राप्ति चित्तवृत्तियों के निरोध से संभव मानी गई है। योग दर्शन आत्मशुद्धि और समाधि पर बल देता है, जिसे गीता ने सहज कर्मयोग और भक्तियोग के माध्यम से और अधिक व्यावहारिक बना दिया। अद्वैत वेदान्त में आत्मा और ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया गया है। आदि शंकराचार्य के अनुसार जीव और ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है; अविद्या के कारण भिन्नता प्रतीत होती है। गीता भी आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हुए अंततः परम सत्य की ओर ले जाती है। वहीं जैन दर्शन आत्मा को चेतन जीव मानता है, जो कर्मबंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। बौद्ध दर्शन अनात्मवाद का प्रतिपादन करता है, परंतु उसका उद्देश्य भी मनुष्य को दुःख से मुक्ति दिलाना ही है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं में आत्मतत्त्व का विविध रूपों में वर्णन हुआ है, किंतु श्रीमद्भगवद्गीता ने आत्मा की अवधारणा को सर्वाधिक संतुलित, व्यावहारिक और लोककल्याणकारी रूप में प्रस्तुत किया है। गीता का आत्मतत्त्व केवल दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि मानव जीवन को धर्म, कर्तव्य, शांति और मोक्ष की ओर प्रेरित करने वाला सार्वभौमिक संदेश है।

निष्कर्ष–

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मतत्त्व की अवधारणा केवल दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन का मार्गदर्शन है। आत्मा को नित्य और परमात्मा का अंश बताकर गीता मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराती है। आत्मज्ञान से कर्म शुद्ध होता है, भक्ति सिद्ध होती है, अंततः मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. अविनाशी तुद्विद्धि ये सर्वमिदं ततम्।
   विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। –श्रीमद्भगवद्गीता, 2.17
2. ये एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
   उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।––श्रीमद्भगवद्गीता, 2.19
3. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
   –श्रीमद्भगवद्गीता, 2.22
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.20
5. जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यति इति।
   –आचार्य यास्क, निरुक्त, 1.1.2
6. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।– –श्रीमद्भगवद्गीता, 15.7
7. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
   न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।––श्रीमद्भगवद्गीता, 2.23
8. द्रष्टव्य–अन्नंभट्टकृत तर्कसंग्रह
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.24
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.25
11. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
    षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।
    –ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका–श्लोक संख्या–3

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

कस्तूरी कुंडल बसे और गुड़िया भीतर गुड़िया में स्त्री-अस्मिता का संघर्ष और आत्मचेतना

डॉ. शालिनी चौधरी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय, शेखसराय, सीतापुर

"जो हमको बदनाम करे हैं, वे क्या इतना सोचे हैं
मेरा पर्दा खोले हैं कि अपना पर्दा खोले हैं।"1 – अनामिका

शोध सारांश (Abstract)
स्त्री विमर्श का वर्तमान संदर्भ अपने वैचारिक समृद्धि और सरोकार के कारण साहित्य एवं समाज में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है। स्त्रियों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व एवं अधिकार बोध को कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया लेकिन स्त्री विमर्श की वैचारिक जमीन को तैयार करने में स्त्री आत्मकथाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।
स्त्री विमर्श की प्रमुख हस्ताक्षर मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ 'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' हिंदी साहित्य में स्त्री-अस्मिता, संघर्ष और आत्मचेतना के सशक्त दस्तावेज हैं।इस शोधपत्र में पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था और पारिवारिक बंधनों के बीच एक स्त्री के अपनी पहचान (अस्मिता) की तलाश के संघर्ष का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।आत्मकथा के पहले खंड 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में लेखिका और उनकी माँ के मध्यकालीन ग्रामीण परिवेश और अभावों के बीच संघर्ष को दर्शाया गया है। वहीं, दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' विवाह संस्था, पुरुष वर्चस्व और रूढ़ियों को चुनौती देते हुए एक स्वतंत्र लेखिका के रूप में उनके उदय की कहानी कहता है। मैत्रेयी पुष्पा ने परंपराओं को तोड़ते हुए बेबाकी के साथ सच को स्वीकार कर स्त्री के भीतर सोई हुई आत्मचेतना को प्रखर रूप से उजागर किया है। इस शोधपत्र में भारतीय समाज में स्त्री-स्वतंत्रता, अस्तित्व की रक्षा और उनके आत्मसंघर्ष के विविध आयामों को रेखांकित करने का भी प्रयास किया गया है।

बीज शब्द (Keywords): विमर्श, अस्तित्व, अस्मिता, आत्मचेतना,आत्मसंघर्ष,आत्मकथा, पितृसत्ता, स्त्री-संघर्ष, स्वतंत्रता।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री-आत्मकथा केवल निजी जीवन का विवरण नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, लैंगिक असमानताओं और स्त्री-अस्तित्व के संघर्ष का वैचारिक दस्तावेज बनकर उभरी है। दलित विमर्श में आत्मकथाओं के साथ स्त्री-विमर्श में भी आत्मकथाओं को आत्मसंघर्ष के रूप में लिया गया है। हिंदी की प्रमुख कथाकार मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ 'कस्तूरी कुंडल बसे'(2002) और 'गुड़िया भीतर गुड़िया'(2008) इसी परंपरा की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। ये आत्मकथाएँ केवल लेखिका के जीवनानुभवों का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री की स्थिति, उसके संघर्ष, उसकी देह, उसकी इच्छाओं और उसकी आत्मचेतना के प्रश्न को गंभीर वैचारिक स्तर पर प्रस्तुत करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं कि – "यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो मेरे जन्म से पहले घटित हो चुकी थीं, मगर उन बातों को टुकड़ों-टुकड़ों में माता जी ने जब-तब बता डाला, जब-जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री-जीवन के बारे में नए सिरे से समझाना पड़ा।"2

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री-विमर्श को शहरी मध्यवर्गीय सीमाओं से बाहर निकालकर ग्रामीण स्त्री के यथार्थ से जोड़ता है। उनकी आत्मकथाओं में या फिर उपन्यासों "इदन्नम, चाक, झूला नट, त्रिया हठ, अल्मा कबूतरी और बेतवा बहती रही" में स्त्री केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि संघर्षशील, प्रश्नाकुल और आत्मनिर्णयी सत्ता के रूप में उपस्थित होती है। यही कारण है कि ये कथाएँ हिंदी स्त्री-विमर्श के इतिहास में विशेष महत्व रखती हैं।

आत्मकथा और स्त्री-अस्मिता का प्रश्न को लेकर मैत्रेयी जी अपनी आत्मकथा के दूसरे भाग "गुड़िया भीतर गुड़िया" में लिखती हैं, - "मैंने कलम थामी ली। कलम के सहारे मेरी चेतना, जिसे मैंने आत्मा की आवाज़ के रूप में पाया, तभी तो साहित्य के द्वार तक चली आई। सुना था कि साहित्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता देता है। हाँ, लिखकर ही तो मैंने जाना कि न मैं धर्म के खिलाफ़ थी, न नैतिकता के विरुद्ध। मैं तो सदियों से चली आ रही तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही थी।"3

स्त्री-आत्मकथा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह स्त्री को स्वयं अपनी कथा कहने का अधिकार देती है। लंबे समय तक साहित्य और इतिहास में स्त्री की छवि पुरुष-दृष्टि द्वारा निर्मित होती रही, किंतु आत्मकथात्मक लेखन ने स्त्री को अपनी भाषा, शिल्प और अनुभव के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया है।

इसीलिए प्रसिद्ध आलोचक अनामिका अपनी पुस्तक 'स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष' में लिखती हैं – "जो ग्रहण करें, वही आपका है। किसी ने गाली दी, आपने ग्रहण ही नहीं की, वह मिसाइल उस तक लौटेगी: जिन्हें दुश्चरित्र कहा जा रहा है, वे सब नई लड़कियाँ ध्रुवस्वामिनियाँ हैं, उन्हें चन्द्रगुप्त चाहिए, क्लीव रामगुप्त नहीं।"4 औरतों की चेतना लंबे समय तक पुरुष वर्चस्व की स्थापित वर्जनाओं में दबी रही लेकिन आधुनिक शिक्षा और मानव अस्तित्व बोध ने उन्हें खुद के अस्तित्व पर बात करने, अपने अधिकारों के लिए सजग होने के लिये बाध्य किया। आजादी से पहले संपत्ति और मताधिकार तक उन्हें हासिल नहीं था। लेकिन भारत के संविधान में उनके अधिकारों को शामिल किया गया।

जवाहरलाल नेहरु और डा. अम्बेडकर के साझे सहयोग से पर्सनल कानून (हिन्दू कोड बिल) पर भी बात चली थी लेकिन कुछ दकियानूसी लोगों ने उसे उस समय सफल नहीं होने दिया लेकिन समय के प्रवाह में जब जरूरी हो गया तब उसे अपने सूचिता अनुरूप ढाल कर लागू किया गया। लेकिन वे कानूनी अधिकार अशिक्षित गाँव की महिलाओं तक नहीं पहुंच सकी।

ऐसे में, मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ इस दृष्टि से और महत्त्वपूर्ण हैं कि वे स्त्री-अस्मिता को केवल अधिकार या समानता के प्रश्न तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उसे सामाजिक-सांस्कृतिक बंधनों, देह-राजनीति, पारिवारिक नियंत्रण और मानसिक संघर्षों से जोड़ती हैं। और स्त्री को सजग करती है।

'कस्तूरी कुंडल बसे' में लेखिका अपने बचपन, मां की जवानी, विवाह और संघर्ष के साथ ग्रामीण परिवेश, पारिवारिक संस्कारों और स्त्री के प्रति समाज की दृष्टि का चित्रण बखूबी करती हैं। वहीं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में वे अपने वैवाहिक जीवन के बंधन से स्वतंत्रता, लेखकीय संघर्ष और स्त्री-स्वतंत्रता की जटिलताओं को अधिक खुले और वैचारिक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

"कस्तूरी" लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की मां हैं जिन पर शीर्षक बना है। वे ब्राह्मण परिवार की लड़की हैं बुंदेलखंड क्षेत्र के कठिन परिवेश में उनका बचपन औपनिवेशिक भारत में बिता है। अंग्रेजों के जुल्म और लगान न चुका पाने से कोड़े की मार की दहशत से पिता का घर छोड़कर कर भाग जाना और जवान होती बेटी को विवाह के लिए मां का गाली देना कई द्वंद्व और स्त्री जीवन संघर्ष को जन्म देते हैं। रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार की कन्या कस्तूरी का परिवार और विवाह के खिलाफ विद्रोह समाज में किसी आग से कम नहीं था।

"कस्तूरी, ढीठ किशोरी, माँ की आंखों में उठती प्रचंड आग की ओर मुंह फेरकर खड़ी हो गई। भाई बलबलाते रहे, वह मूली उखाड़ने और गाय भैसों को चारा डालने के लिए खेतों पर बनी झोपड़ी की ओर निकल गई। मामूली सूरत की साँवली और दुबली पतली लड़की को माँ और भाइयों के गुस्से का कारण समझ में नहीं आ रहा था,... वह खुद से पूछती – ब्याह क्यों होता है? उत्तर एक नहीं कई आते, जिनसे वह इतना घबरा जाती कि दोबारा ब्याह के बारे में सोचना नहीं चाहती थी।"5 दरअसल हुआ यह था कि कस्तूरी स्वाध्यन और

अपनी सहेली से दो अक्षर पढ़ना सीख लिया था और अक्षर जोड़ कर पढ़ने की जिज्ञासा में उसने, पहली किताब "रेशम कुंवर सती" पढ़ ली थी। और अपने 'ब्राह्मण परिवार के उपाध्यय गोत्र की सनाढ्य परम्परा'6 में स्त्री की हैसियत और समाज में फैली "सती प्रथा" के कारण ही विवाह से भयभीत थी। हाँलाकि राजा राममोहन राय के अथक प्रयासों से Lord William Bentinck(लार्ड विलियम बेटिंग) ने 1829 में कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया था लेकिन ग्रामीण परिवेश में व्यवहारिक रूप में चलता रहा।

जब कस्तूरी का मां विवाह न करने का कारण पूछती है तो वह बताती है कि, - 'मां पति बूढ़ा और कमजोर है। जल्दी ही वह मर जाएगा तो लोग मुझे भी उसकी चिता पर लेटा कर मार डालेंगे और मैं मरना नहीं चाहती। क्योंकि चाची(माँ) मैंने रेशम कुंवर सती की किताब पढ़ी है।'6

इतना सुनते ही ग्रामीण परिवेश में पली-बढ़ी लेखिका की नानी यानी कस्तूरी की माँ बिना सोचे ही झनकर कहती है कि – "किताब पढ़ी है?... अनर्थ क्यों हो रहा है, सूत्र माँ के हाथ आ गया । इस बार धीमा मगर इतना तीखा और नोकदार था कि कस्तूरी बिलबिला जाए-" तू तो पोथी पतरा पढ़कर बरबाद हुई है? हाय कुभागी तू होते ही न मर गई! मैं सोच रही थी रामश्री की अम्मा मेरी छोरी को दूत कर रही हैं – कि कस्तूरी की चाची अपनी लाडिकिनी के लच्छिन सुधारो। मैं तो खुद ही भोगे बैठी हूँ ।... मां ने गुस्से में कस्तूरी की पीठ को धाँय-धाँय कूटा, बाद में अपनी छाती पीटी और दाँत घिस-घिसकर गालियाँ दीं-"मेरी सौत, खानदान की जड़ में दीमक, हम सब का सफाया कर देगी। हरजाई, कौन सा-यार तुझे ब्याह होकर विदा होने से रोक रहा है?"7

मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण समाज और स्त्री की स्थिति के बारे में जितनी जीवटता के साथ अपनी आत्मकथा में लिखा है। उतनी सी जीवट स्त्री पात्र को अपनी कथाओं में चित्रित किया। चाक, झूलानट और अल्मा कबूतरी में कस्तूरी के संघर्ष की झलक थोड़ी सी जरूर दिख जाएगी। क्योंकि उनकी माँ 'कस्तूरी' का जीने की दृढ़ चाह ने ही विपरीत परिस्थितियों में आगे बढ़ने का साहस और धैर्य का निर्माण किया। जब उनके पति लगान के डर से भाग गये और वापस लौटकर मर गये तो बूढ़े ससुर और छोटी सी बेटी के साथ जीवन जीना कठिन हो गया लेकिन उन्होंने हार नहीं माना और अपनी अधूरी जिजीविषा को पूरी करने के लिए देहरी से बाहर कदम रखा और पढाई करने लगीं। आजादी के बाद देश की दशा बदली और उन्होंने ग्राम सेविका की सरकारी नौकरी के लिए गांव से शहर झांसी के लिए प्रस्थान किया।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं का सबसे सशक्त पक्ष ग्रामीण स्त्री-जीवन का यथार्थपरक चित्रण है। बुंदेलखंडी समाज में स्त्री को पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित कर दिया गया है। उसके जीवन का उद्देश्य परिवार, विवाह और पुरुष की इच्छाओं की पूर्ति तक सीमित माना जाता है। तभी तो रीति-नीति और ब्राह्मण परम्परा को ठुकरा कर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती कस्तूरी को उसकी ही जाति बिरादरी की स्त्रियाँ ताना मारती हैं, - "यह रांड़ क्या हुई, सांड़ हो गई। न छोरी पर ममता, न बुढ़े ससुर का रहम। पढ़ाई-पढ़ाई का भजन करती हुई दोनों को रौंद रही है। अरे तू डॉव-डाँव डोलेगी तो बच्चा की ऐसी ही गत बनेगी।बनी है महात्मा गाँधी की चेली।"8

लेखिका इस व्यवस्था के भीतर स्त्री की पीड़ा और विद्रोह दोनों को सामने लाती हैं। बचपन से ही स्त्री को यह सिखाया जाता है कि उसका अस्तित्व पुरुष-केन्द्रित है। किंतु मैत्रेयी पुष्पा इस मानसिकता को स्वीकार नहीं करतीं। वे शिक्षा, लेखन और आत्मनिर्णय के माध्यम से अपनी पहचान निर्मित करती हैं। यहाँ स्त्री-अस्मिता का संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी है। लेखिका स्वयं स्वीकार करती हैं कि स्त्री के भीतर भी सदियों की दासता और संस्कार मौजूद रहते हैं, जिनसे मुक्ति आसान नहीं होती।

देह और स्त्री-स्वायत्तता का विमर्श 'गुड़िया भीतर गुड़िया'

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री-देह के प्रश्न को अत्यंत साहसिक ढंग से उठाता है। हिंदी साहित्य में लंबे समय तक स्त्री-देह को नैतिकता और मर्यादा के दायरे में नियंत्रित किया गया, किंतु उनकी आत्मकथाएँ देह को स्त्री-अस्तित्व के स्वाभाविक और वैध पक्ष के रूप में प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि उन्हें बोल्ड लेखिका भी माना जाता है। 'चाक' उपन्यास की पात्र सारंग को खड़ा कर के स्त्री देह की मुक्ति के सवाल को उठाया है।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' में स्त्री की इच्छाओं, संवेदनाओं और मानसिक द्वंद्वों का चित्रण अत्यंत स्पष्टता के साथ किया गया है। यही कारण है कि इस आत्मकथा को लेकर साहित्यिक जगत में व्यापक बहस हुई। कई आलोचकों ने इसे साहसी और स्त्री-मुक्ति का दस्तावेज कहा, जबकि कुछ ने इसे सामाजिक मर्यादाओं के विरुद्ध माना।

लेकिन मैत्रेयी खुद लिखती हैं, - "इन दिनों मैं थी माँ और पति के बीच ऐसा बिन्दु जिसका वजूद हिन्डोले पर चढ़ा रहता था। शारीरिक और मानसिक तौर पर इस छोर से उस छोर तक आना और लौटना...। ऐसा क्यों? मैं तो पहले ही माँ के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी। मकसद भी साफ था, एक पुरुष साथी मिलने से मेरे रात दिन सुरक्षित हो जाएंगे। मैं अपने आचरण से पत्नी लेकिन मानसिक स्तर पर जो दखल देने लगती, वह कौन थी? कौन थी वह जो धीरे-धीरे मुझे विवाह-संस्था से विरक्त करती हुई...मैं आसपास देखती किस-किस ने मेरी दृष्टि बदली और दृष्टिकोण पलट कर रख दिया? शायद वह माँ थी जो परोक्ष रूप से मेरा रास्ता परिवर्तन गामी लोगों की ओर ले गई।"9

दरअसल, मैत्रेयी पुष्पा का उद्देश्य सनसनी पैदा करना नहीं, बल्कि स्त्री के अनुभवों को ईमानदारी से अभिव्यक्त करना है। वे स्त्री को केवल त्याग और सहनशीलता की प्रतिमा के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसे इच्छाओं और आकांक्षाओं से युक्त मनुष्य मानती हैं। यही कारण है कि उन्होंने वैवाहिक जीवन को निभाते हुए अपने स्त्रीत्व के लिए सुगम रास्ता बनाया। उन्होंने जहाँ मिस्टर शर्मा की पत्नी की जिम्मेदारी निभाई वहीं, डा. सिद्धार्थ के साथ खुल अपने को व्यक्त करने का सच्चा साथी पाया। वे अपनी स्त्री को किसी बंधन में बंधने नहीं देती हैं, उसे जब कहीं सामाजिक रीतियों की जकड़बंदी का ऐहसास होता है तो तुरन्त बगावत कर देती है। और कह उठती है कि – "यदि कोई पति अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में कर देना चाहिए।"10

यही मैत्रेयी पुष्पा के स्त्रीत्व की आत्मचेतना का विद्रोह है।

इन आत्मकथाओं में आत्मचेतना का विकास क्रमिक रूप में दिखाई देता है। प्रारंभ में लेखिका सामाजिक मर्यादाओं और पारिवारिक दबावों से बँधी हुई दिखाई देती हैं, किंतु धीरे-धीरे उनमें प्रश्नाकुलता और प्रतिरोध की चेतना विकसित होती है। और इसे वे अपनी माँ कस्तूरी से प्रेरणा के रूप में ग्रहण करती है। तभी तो दिल्ली आने के बाद वह संभ्रान्त जीवन जीने के तरीकों को जीना चाहती है लेकिन इस खोखले चेहरों के पीछे छुपे वीभत्स चेहरों को तुरन्त पहचान लेती है और अपना मार्ग खुद तय करती है। लेखन मैत्रेयी पुष्पा को स्त्री जीवन के गहन पहलू को समझने की दृष्टि दी। जहाँ राजेन्द्र यादव ने हंस के कार्यालय में मुक्त संवाद के लिए वातावरण निर्मित किया।

अनामिका स्त्री स्वाधीनता के प्रश्न पर लिखती हैं,-"उपनिवेश रह चुके भूखंडों में स्त्रियाँ दोहरे (नस्लगत+यौनगत) दोहन का शिकार थीं। स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी उन्हें सड़क और मिलों तक लाकर सार्वजनिक स्पेस का हिस्सा बना गऐ तो भी 'घरेबाहिरे' का द्वैत बना ही रहा।"11

लेखन उनके लिए केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि आत्मनिर्माण और प्रतिरोध का माध्यम बन जाता है। वे समाज द्वारा निर्धारित स्त्री-आदर्शों को चुनौती देती हैं। यह विद्रोह केवल पुरुष-विरोध नहीं है, बल्कि उन समस्त सामाजिक संरचनाओं के विरुद्ध है जो स्त्री को सीमित करती हैं। इसीलिए उनकी आत्मकथाओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर वैचारिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर उपस्थित है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह ने स्त्री-लेखन की चर्चा करते हुए कहा था कि – 'स्त्री जब स्वयं अपनी कथा लिखती है तो वह समाज के छिपे हुए यथार्थ को उजागर करती है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ इसी अर्थ में महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे ग्रामीण स्त्री के जीवनानुभव को केंद्र में लाती हैं।'

भाषा और कथाशिल्प

मैत्रेयी पुष्पा की भाषा उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। उनकी भाषा में लोकजीवन की सहजता, ग्रामीण संस्कृति की गंध और स्त्री-अनुभव की तीव्रता मौजूद है। वे कृत्रिम साहित्यिक भाषा की बजाय बोलचाल और लोकभाषा के प्रयोग से अपने अनुभवों को अधिक प्रामाणिक बनाती हैं।

उनकी आत्मकथाओं का कथाशिल्प रैखिक न होकर स्मृतियों, अनुभवों और आत्मविश्लेषण के माध्यम से विकसित होता है। इससे पाठक केवल घटनाएँ नहीं पढ़ता, बल्कि लेखिका की मानसिक यात्रा का सहभागी बनता है।

मैनेजर पांडेय के अनुसार, मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री-विमर्श को सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है। उनके यहाँ स्त्री केवल भावनात्मक सत्ता नहीं, बल्कि सामाजिक संघर्ष की सक्रिय इकाई है। अन्य स्त्री लेखिकाओं ने भी अपनी पहचान और जीवन संघर्ष के बारे में लिखा है। प्रभा खेतान ने भी अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या" में स्त्री जीवन के विभिन्न आयाम पर खुल कर लिखा है।

वे, स्त्री-आत्मकथाओं को स्त्री-अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति मानती हैं। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ स्त्री के आत्मस्वर को निर्भीक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

कुछ आलोचकों ने उनकी स्पष्टवादिता को विवादास्पद भी माना, किंतु यही स्पष्टता उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाती है। वे सामाजिक नैतिकता के खोखले मानकों को चुनौती देती हैं।

स्त्री-विमर्श की दृष्टि से देखें तो मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ हिंदी स्त्री-विमर्श को कई स्तरों पर समृद्ध करती हैं—

1. वे ग्रामीण स्त्री के जीवन को विमर्श के केंद्र में लाती हैं।
2. स्त्री-देह और इच्छाओं के प्रश्न को वैधता प्रदान करती हैं।
3. स्त्री को आत्मनिर्णयी और संघर्षशील सत्ता के रूप में स्थापित करती हैं।
4. पितृसत्तात्मक नैतिकता और सामाजिक नियंत्रण की आलोचना करती हैं।
5. आत्मकथा को स्त्री-प्रतिरोध के साहित्यिक माध्यम के रूप में विकसित करती हैं।

निष्कर्षत:

'कस्तूरी कुंडल बसे' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' हिंदी साहित्य में स्त्री-अस्मिता और आत्मचेतना की अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इन आत्मकथाओं में मैत्रेयी पुष्पा ने अपने निजी अनुभवों के माध्यम से भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना, स्त्री की दासता, उसकी इच्छाओं, संघर्षों और आत्मनिर्माण की प्रक्रिया को गहन संवेदनशीलता और वैचारिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है।

उनकी आत्मकथाएँ यह स्थापित करती हैं कि स्त्री-मुक्ति केवल बाहरी स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं, बल्कि आत्मचेतना, आत्मसम्मान और आत्मस्वीकृति की प्रक्रिया है। इस दृष्टि से ये कृतियाँ हिंदी स्त्री-विमर्श की आधारभूत और अत्यंत प्रभावशाली उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं।

संदर्भ :

1. अनामिका, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, अंसारी रोड, नयी दिल्ली 110002, आवृत्ति संस्करण :2017, पृष्ठ 14
2. मैत्रेयी, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली- 110002, चौथा संस्करण : 2017, पृष्ठ 5
3. पुष्पा, मैत्रेयी, गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली 110002, तीसरा संस्करण :2016, पृष्ठ 7

4. अनामिका, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, अंसारी रोड, नयी दिल्ली 110002, आवृत्ति संस्करण :2017, पृष्ठ 16
5. मैत्रेयी, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली- 110002, चौथा संस्करण : 2017, पृष्ठ 9
6. वही, पृष्ठ 20
7. वही, पृष्ठ 11
8. वही, पृष्ठ 42
9. पुष्पा, मैत्रेयी, गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली 110002, तीसरा संस्करण :2016, पृष्ठ 40
10. वही, पृष्ठ 12
11. अनामिका, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, अंसारी रोड, नयी दिल्ली 110002, आवृत्ति संस्करण :2017, पृष्ठ 26

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

NEP 2020 Implementation and Its Positive Impact on India's Education System: A Survey of B.Ed. Students (2025–2026)

Dr. Sunita Gupta
Dean, Faculty of Education, Yoga, Sports Science & Physical Education, Babu Dinesh Singh University, Garhwa (Jharkhand) 822114, sunita0548@gmail.com
Dr. Kamal Kumar
Faculty of Education, Yoga, Sports Science & Physical Education, Babu Dinesh Singh University, Garhwa (Jharkhand) 822114

ABSTRACT
Purpose – This study aimed to assess the perceived impact of National Education Policy (NEP) 2020 implementation on India's education system, focusing on systemic reforms, inclusion of Economically Weaker Margins (EWM), integration of Indigenous Traditional Knowledge (ITK), and overall holistic prosperity.
Method – A survey-based quantitative study was conducted among 100 B.Ed. students at Dinesh College between May 2025 and May 2026. A structured questionnaire with 50 closed-ended items was administered, and responses were analyzed using descriptive statistics.
Results – The findings revealed overwhelmingly positive perceptions. For education system reform, 84% of respondents agreed that NEP's 5+3+3+4 structure, multiple entry/exit options, mother tongue instruction, and vocational education will bring significant positive change. Regarding EWM inclusion, 85% supported provisions such as the Gender Inclusion Fund, free boarding, open schooling, and enhanced mid-day meals. For ITK integration, 85% endorsed including Ayurveda, Yoga, Sanskrit, and tribal ecological knowledge in the mainstream curriculum. Overall, 90% of participants agreed that NEP implementation will make Bharat's education system prosperous and globally competitive.
Conclusion – B.Ed. students demonstrated strong optimism that NEP 2020 will successfully reform curricula, empower marginalized groups, preserve indigenous knowledge, and foster holistic development.
Implications – The study provides empirical evidence for policymakers and teacher educators to strengthen NEP's grassroots implementation.

Key-words: National Education Policy (NEP) 2020, B.Ed. students' perceptions, Indigenous Traditional Knowledge (ITK), Holistic education reform, Teacher education

1. INTRODUCTION

1.1 Background and Problem Statement

The National Education Policy (NEP) 2020 represents India's first education policy of the 21st century, marking a paradigm shift from the traditional 10+2 structure to a holistic, flexible, and multidisciplinary framework (Ministry of Education, 2020). While the policy has completed five years of implementation, the empirical evidence regarding its perceived impact among future educators, the B.Ed. students who will eventually implement these reforms at the grassroots level, remains considerably limited (Bera, 2024). This gap between policy formulation and stakeholder perception formed the central problem that motivated the present investigation.

A critical examination of existing literature reveals that although NEP 2020 has been widely discussed at the policy level, systematic studies capturing the voices of teacher trainees are scarce. Prior research indicates that B.Ed. students demonstrate better awareness of NEP dimensions compared to M.Ed. and M.A. Education students (Sahu & Sahu, 2024), yet their affirmative perceptions regarding specific reform components have not been adequately documented. Furthermore, national surveys report that while 90% of higher education institutions offer flexible curricula, only 36% have implemented multiple entry-exit options (QS I-GAUGE, 2025), revealing a significant implementation gap that future teachers must navigate. The inclusion of Economically Weaker Margins (EWM) and integration of Indigenous Traditional Knowledge (ITK) remain under-researched areas, with only 38% of institutions offering elective Indian Knowledge Systems (IKS) courses (QS I-GAUGE, 2025). Additionally, approximately 1.17 million children remain out of school due to systemic implementation gaps (UNESCO, 2023), underscoring the urgency of understanding educator perceptions on EWM provisions.

1.2 Existing Research in India

Several scholarly investigations have laid the groundwork for understanding NEP's impact. Bera (2024) provided a holistic analysis of NEP-2020's influence on school, higher, and teacher education levels, concluding that the policy would significantly develop India's human resources through comprehensive reform. A pilot study among 40 students in Ahmedabad revealed that learners positively perceive NEP's emphasis on skill-based education and flexible learning models, though concerns regarding institutional preparedness and the digital divide persist (Sharma & Patel, 2024). The QS I-GAUGE implementation report (2025), based on responses from 245 academic leaders across 165 institutions, documented substantial progress in curriculum flexibility (90% adoption) and faculty development (92% participation), while highlighting under-implementation in areas such as multiple entry-exit options (36%) and IKS electives (38%). Balakrishnan (2021) reflected on NEP's potential to empower emerging India through excellence in education, emphasizing the policy's transformative vision. Furthermore, a national seminar at Nagaland University (March 2026) specifically addressed the integration of IKS in teacher education, demonstrating the growing academic focus on indigenous knowledge systems

(Nagaland University, 2026). However, none of these studies specifically quantified B.Ed. students' perceptions across the four key domains of systemic reform, EWM empowerment, ITK integration, and holistic prosperity simultaneously, creating a clear research gap that the present study addresses.

1.3 Present Research Effort and Objectives

To bridge this identified gap, the present study was conceptualized and executed among 100 B.Ed. students at Dinesh College between May 2025 and May 2026. The primary objective was to assess the perceived impact of NEP 2020 implementation across four dimensions: (a) systemic educational reforms including the 5+3+3+4 structure, multiple entry-exit options, mother tongue instruction, and vocational education; (b) provisions for Economically Weaker Margins including the Gender Inclusion Fund, free boarding for SC/ST/OBC/EWS students, open schooling, and enhanced mid-day meal schemes; (c) integration of Indigenous Traditional Knowledge including Ayurveda, Yoga, Sanskrit, IKS division, and tribal ecological knowledge; and (d) overall holistic prosperity including technology integration, teacher education reform, and the Vasudhaiva Kutumbakam vision.

1.4 Outcomes and Applications

The findings revealed overwhelmingly positive perceptions: 84% of respondents supported systemic reforms, 85% endorsed EWM provisions, 85% affirmed ITK integration, and 90% agreed that NEP implementation would make Bharat's education system prosperous and globally competitive. These results have direct applications for policymakers, teacher educators, and curriculum designers. For policymakers, the high agreement (90%) on overall prosperity provides empirical justification for continued investment in NEP implementation. For teacher education institutions, the 81% support for the four-year integrated B.Ed. validates the restructuring of pre-service teacher preparation programmes. For curriculum developers, the 89% endorsement for including Ayurveda, Yoga, and Sanskrit in mainstream curriculum offers stakeholder validation for ITK integration. The findings also inform the operationalization of the Gender Inclusion Fund (85% support) and the expansion of mid-day meal schemes to include breakfast (90% agreement), providing evidence-based direction for resource allocation. Ultimately, this research contributes to the growing body of empirical literature on NEP 2020 by centering the voices of future teachers who will serve as the primary agents of policy implementation at the school level (UNESCO, 2023).

LITERATURE REVIEW

The perception of educational policy among stakeholder groups has been theorized through multiple frameworks. Rogers' (2003) Diffusion of Innovation Theory posits that adoption rates depend on perceived relative advantage, compatibility, and complexity—a lens applicable to NEP 2020 implementation. Similarly, Fullan (2007) emphasized that successful reform requires "subjective meaning" construction by grassroots implementers, justifying the present study's focus on B.Ed. students.

Empirical investigations have established baseline awareness levels. Sahu and Sahu (2024) reported that B.Ed. students demonstrated higher NEP awareness (76.4%) than M.Ed. peers

(68.2%), attributing this to practice-oriented curricula. Sharma and Patel (2024) found 85% positive perception of skill-based education among Ahmedabad undergraduates, though 62% expressed digital infrastructure concerns. The QS I-GAUGE (2025) national survey of 245 academic leaders revealed that while 90% of institutions adopted flexible curricula, only 36% implemented multiple entry-exit options.

Regarding systemic reforms, Kumar (2023) examined mother tongue instruction across five states, finding 78% teacher support but only 34% received local language materials. The present study's 88% agreement on language reform (Table 1) suggests generational shifts. For equity provisions, UNESCO (2023) reported 1.17 million out-of-school children in India, with disproportionate SC/ST representation. Singh and Saxena's (2022) meta-analysis of 23 Indian studies found mid-day meals increased attendance by 12.6%, contextualizing the present study's 90% agreement on nutritional interventions (Table 2).

Indigenous knowledge integration has received focused attention. Nagaland University (2026) documented that 82% of teacher educators supported IKS inclusion, yet only 41% felt trained. QS I-GAUGE (2025) found only 38% of institutions offered IKS electives. Patel and Mehta (2025) reported 91% of tribal educators supported ecological knowledge integration in science curricula aligning with the present study's 83% agreement (Table 3).

Technology provisions were examined by Deshmukh and Kulkarni (2024), finding 79% DIKSHA usage but only 43% SWAYAM integration. Bhattacharya (2023) analyzed NSSO data revealing 24% rural versus 67% urban household internet access a disparity relevant to the present study's Garhwa, Jharkhand sample.

Teacher education reform remains debated. Shukla and Trivedi (2024) surveyed 320 teacher educators, finding 54% supported the four-year integrated B.Ed. Rao (2023) followed 120 four-year B.Ed. graduates, reporting 87% higher pedagogical confidence. Gupta and Sharma (2025) analyzed Union Budgets (2021–2025), finding education expenditure stagnant at 2.8–3.1% of GDP against NEP's 6% target.

The literature reveals critical gaps: no prior study has quantified B.Ed. student perceptions across systemic reform, EWM, ITK, and holistic prosperity simultaneously; implementation reports focus on institutions rather than individual stakeholders; and NEP components have been examined in isolation rather than as interconnected reforms. The present study addresses these gaps through an integrated empirical assessment (Cronbach's $\alpha = 0.89$), centering future teachers' voices as essential inputs for evidence-based policy refinement.

MATERIALS & METHODS

3.1 Research Design and Approach

A quantitative survey-based research design was adopted for this study to assess the perceived impact of National Education Policy (NEP) 2020 implementation among B.Ed. students. The cross-sectional descriptive survey method was considered most appropriate as it allowed the collection of standardized perceptual data from a defined population within a specific time frame (Creswell & Creswell, 2018). This design enabled the researchers to quantify the level of agreement across four predetermined domains: systemic educational reforms, Economically

Weaker Margins (EWM) provisions, Indigenous Traditional Knowledge (ITK) integration, and holistic prosperity outcomes.

3.2 Research Location and Sample

The study was conducted at Dinesh College of Education, a recognized teacher training institution located in Garhwa (Jharkhand), India. This institution was purposively selected because it offers a two-year Bachelor of Education (B.Ed.) programme (Figure A-D) approved by the National Council for Teacher Education (NCTE) and has actively participated in NEP-aligned curriculum reforms since 2022.

The target population comprised all students enrolled in the B.Ed. programme during the academic session 2024–2026. A total of 100 B.Ed. students were included as the final sample, representing a census sampling approach (Kumar, 2021). The sample included both first-year and second-year students to ensure representation across different stages of teacher preparation. The demographic composition of the sample is summarized below:

Demographic Characteristic	Category	Frequency (N=100)	Percentage (%)
Gender	Male	42	42%
Gender	Female	56	56%
Gender	Transgender	2	2%
Year of Study	First Year (2024–2025)	48	48%
Year of Study	Second Year (2025–2026)	52	52%
Educational Background	Arts	35	35%
Educational Background	Science	41	41%
Educational Background	Commerce	24	24%



Figure 1 A – D: Students of Faculty of Education, Yoga, Sports Science and Physical Education (B.Ed.) interaction with Dr. Sunita Gupta

3.3 Survey Instrument Development

A structured closed-ended questionnaire was developed as the primary data collection tool. The instrument contained 50 multiple-choice questions (MCQs) distributed across four thematic sections aligned with the research objectives. Each MCQ offered four response options: (a) Strongly Agree, (b) Agree, (c) Neutral, (d) Disagree, and (e) Strongly Disagree. For analysis purposes, "Strongly Agree" and "Agree" were combined into the "Agree" category, while "Strongly Disagree" and "Disagree" were combined into the "Disagree" category (Likert, 1932).

The four thematic sections were structured as follows:

Section	Theme	Number of Questions	Source/Reference
A	Systemic Educational Reforms (5+3+3+4, multiple entry-exit, mother tongue, vocational education)	12	NEP 2020 document (Ministry of Education, 2020)
B	EWM Provisions (Gender Inclusion Fund, free boarding, open schooling, mid-day meals)	13	NEP 2020 Equity provisions (Bera, 2024)
C	ITK Integration (Ayurveda, Yoga, Sanskrit, IKS, tribal knowledge)	13	IKS division guidelines (Nagaland University, 2026)

D	Holistic Prosperity (Technology, teacher education, governance, Vasudhaiva Kutumbakam)	12	QS I-GAUGE report (2025)
Total		50	

3.4 Pilot Testing and Validation

The initial draft of the questionnaire was reviewed by three subject matter experts in the field of teacher education and educational policy. Based on their feedback, five items were reworded for clarity and two items were merged, resulting in the final 50-item version. The content validity ratio (CVR) was calculated and found to be 0.78, exceeding the minimum acceptable threshold of 0.62 for validation (Lawshe, 1975).

A pilot study was conducted with 30 B.Ed. students from a similar teacher training institution (not included in the final sample) to assess the reliability of the instrument. The Cronbach's alpha coefficient for the entire questionnaire was 0.89, indicating high internal consistency (Nunnally & Bernstein, 1994). The section-wise reliability coefficients were: Section A ($\alpha = 0.87$), Section B ($\alpha = 0.85$), Section C ($\alpha = 0.88$), and Section D ($\alpha = 0.86$).

3.5 Data Collection Procedure

Data collection was carried out between May 2025 and March 2026 over a period of approximately ten months. A unique feature of this study was that feedback was collected three separate times from the same 100 participants to ensure consistency and reliability of responses.

First Feedback Collection (May 2025): The initial round of data collection was conducted at the beginning of the academic session. Participants were gathered in a lecture hall at Dinesh College of Education, and the purpose of the study was explained. The 50-item questionnaire was administered in pen-and-paper format, and students were given 45 minutes to complete it. A total of 100 completed questionnaires were received, yielding a 100% response rate.

Second Feedback Collection (November 2025): Six months after the first round, the same questionnaire was re-administered to the same 100 participants. This was done to assess the stability of responses over time and to capture any changes in perception following their exposure to NEP-related curriculum content during the intervening semester (Dillman et al., 2014). All 100 students participated again, maintaining the 100% response rate.

Third Feedback Collection (March 2026): The final round of data collection was conducted at the end of the academic session. The same 50-item questionnaire was administered for the third time. This third iteration allowed the researchers to confirm the consistency of findings and to capture the consolidated perceptions of students who had completed almost their entire B.Ed. programme (Fowler, 2014). Once again, all 100 students participated.

Thus, a total of 300 individual feedback responses (100 participants × 3 rounds) were collected over the ten-month period. For the final analysis presented in this paper, the data from the third feedback collection (March 2026) were used as the primary dataset, representing the most mature and informed perceptions of the participants.

3.6 Ethical Considerations

Prior to data collection, formal permission was obtained from the Principal of Dinesh College of Education. The study was conducted in accordance with the ethical guidelines for educational research (British Educational Research Association, 2018). All participants were informed about the purpose of the study, the voluntary nature of their participation, and their right to withdraw at any time without any consequences. Written informed consent was obtained from each participant. Anonymity and confidentiality were strictly maintained; participants were assigned unique identification codes instead of using their names. The data were stored on a password-protected computer and accessed only by the research team.

3.7 Data Analysis

Quantitative data from the 50-item questionnaire were entered into Microsoft Excel and subsequently transferred to SPSS version 26.0 for statistical analysis. Descriptive statistics, including frequencies and percentages, were computed for each survey statement across the four thematic sections (Field, 2018). The percentage of participants who agreed (combining Strongly Agree and Agree), remained neutral, or disagreed (combining Disagree and Strongly Disagree) was calculated for each statement. The results were organized into four separate tables corresponding to the four research domains. No inferential statistical tests were applied as the primary objective was to describe the perceptual patterns of the sample rather than to test causal relationships (Pallant, 2020).

3.8 Limitations

Several limitations of the methodology should be acknowledged. First, the study was confined to a single teacher training institution, which limits the generalizability of the findings to all B.Ed. students across India. Second, the use of a convenience-purposive sampling strategy rather than random sampling may introduce selection bias. Third, the reliance on self-reported perceptions may not fully capture actual knowledge or behaviour (Podsakoff et al., 2003). Fourth, the study did not include a pre-test post-test experimental design to measure change in perceptions over time, despite collecting feedback at three different time points; the three rounds were used primarily for consistency checking rather than for measuring longitudinal change. Despite these limitations, the study provides valuable empirical insights from the perspective of future teachers who are the ultimate stakeholders in NEP implementation.

RESULTS & DISCUSSION

The present results section was systematically compiled based on the survey responses obtained from 100 B.Ed. students at Dinesh College of Education between May 2025 and March 2026. The data collection process involved three separate feedback rounds, and the final analysis utilized the responses from the third round conducted in March 2026. The compilation of results was carried out under the invaluable guidance and supervision of Dr. Sunita Gupta (Professor and Dean, Faculty of Education, Yoga, Sports Science and Physical Education, Garhwa) and Dr. Kamal Kumar (Associate Professor, Educational Research Methodology), who contributed significantly to the thematic categorization of the 50 survey items into four distinct domains: systemic reforms, EWM provisions, ITK integration, and holistic prosperity. Their expert oversight ensured that the

raw percentage data from each table were accurately interpreted and aligned with the broader objectives of the NEP 2020 implementation study. The findings presented in Tables 01 through 04 represent the consolidated agreement levels across all participants, providing a clear empirical foundation for the subsequent discussion.

Table 01: Impact of NEP on Education System Reform

Survey Statement	Agree (%)	Neutral (%)	Disagree (%)	Key Finding
NEP's 5+3+3+4 structure will improve foundational literacy	86%	10%	4%	Strong support for curricular reform
Multiple entry/exit options will reduce dropout rates	82%	12%	6%	Flexibility is seen as major reform
Academic Bank of Credit will modernize higher education	79%	15%	6%	Positive towards credit system
Mother tongue instruction will improve learning outcomes	88%	8%	4%	High agreement on language reform
Board exams will become competency-based (not rote)	81%	13%	6%	Support for assessment reform
Vocational education from Grade 6 will create skilled graduates	84%	10%	6%	Positive for employability

Table 1 presents the perceptions of B.Ed. students regarding the implementation of the National Education Policy (NEP) 2020 and its role in transforming India's education system. The findings indicate a highly positive response toward major reforms introduced under NEP 2020, reflecting strong acceptance of structural, pedagogical, and assessment-related changes among future educators.

The survey results reveal that 86% of respondents agreed that the new 5+3+3+4 curricular and pedagogical structure would improve foundational literacy and numeracy, while only 4% disagreed. This strong level of agreement demonstrates that teacher trainees perceive the revised school structure as a progressive step toward strengthening early childhood education and conceptual learning. The finding supports the policy objective of replacing the traditional rote-based system with age-appropriate and competency-oriented education.

Similarly, 82% of participants believed that the multiple entry and exit options in higher education would help reduce dropout rates, whereas only 6% disagreed. The flexibility provided through this system appears to be viewed positively by respondents, especially in the Indian context where economic and social factors often interrupt students' educational continuity. The reform is therefore perceived as an inclusive mechanism capable of improving accessibility and retention in higher education institutions.

The data further indicate that 79% of respondents supported the Academic Bank of Credit (ABC) system, considering it a modern and innovative reform in higher education. The comparatively

higher neutral response (15%) may suggest that some students still require greater awareness regarding the operational mechanisms of the credit transfer system. Nevertheless, the majority opinion reflects confidence in the digitization and flexibility of academic learning pathways promoted by NEP 2020.

One of the strongest areas of agreement emerged in relation to mother tongue or regional language instruction, where 88% of respondents agreed that it would improve learning outcomes. This finding highlights the widespread belief that students understand concepts more effectively when taught in their native language during foundational years. The result aligns with contemporary educational psychology theories emphasizing cognitive development through familiar linguistic environments. Only 4% disagreed, indicating minimal resistance to language-based reforms.

Regarding examination reforms, 81% of respondents agreed that board examinations would gradually shift from rote memorization toward competency-based assessment patterns. This reflects optimism among future teachers that NEP 2020 can transform India's evaluation system into one that promotes analytical thinking, creativity, and problem-solving abilities. The result also suggests growing acceptance of learner-centered pedagogies in teacher education institutions.

The survey additionally found that 84% of participants believed that introducing vocational education from Grade 6 would create more skilled and employable graduates. Respondents perceived vocational integration as a practical reform capable of bridging the gap between education and employment. The low disagreement percentage (6%) further indicates broad support for skill-based learning and experiential education, both of which are central objectives of NEP 2020.

Overall, the findings presented in Table 1 demonstrate that B.Ed. students hold a highly favorable perception of NEP 2020 reforms. The results suggest that future educators recognize the policy's potential to modernize India's education system through flexibility, inclusivity, competency-based learning, language empowerment, and skill development. The consistently high agreement percentages across all indicators indicate strong confidence in the transformative capacity of NEP 2020 for achieving holistic educational prosperity in India.

Table 02: Positive Impact of NEP on EWM (Economically Weaker Margins)

Survey Statement	Agree (%)	Neutral (%)	Disagree (%)	Key Finding
Gender Inclusion Fund will increase equity for girls & transgender	85%	11%	4%	Strong support for gender equity
Free boarding for SC/ST/OBC/EWS in school complexes	83%	12%	5%	Positive for marginalized students
Open schooling will bring 2 crore out-of-school children back	80%	14%	6%	High expectation for inclusion
Multiple entry/exit helps EWM students rejoin after dropout	87%	9%	4%	Flexibility seen as EWM-friendly

Special Education Zones for disadvantaged regions	82%	13%	5%	Targeted intervention supported
Mid-day meal + breakfast will increase retention	90%	7%	3%	Highest agreement for EWM welfare

Table 2 presented the perceptions of B.Ed. students regarding the positive impact of NEP 2020 on Economically Weaker Margins (EWM) and disadvantaged groups. The findings reflected a strong belief that the policy reforms promoted educational equity, inclusion, and social justice.

The results showed that 85% of respondents agreed that the Gender Inclusion Fund would enhance educational equity for girls and transgender learners, while only 4% disagreed. This indicated that future teachers strongly supported gender-sensitive initiatives introduced under NEP 2020.

Similarly, 83% of participants supported the provision of free boarding facilities for SC/ST/OBC/EWS students in school complexes. Respondents perceived this initiative as an important step toward improving access to education for marginalized communities, particularly in rural and economically disadvantaged regions.

The study further revealed that 80% of respondents believed that open schooling systems would help bring nearly two crore out-of-school children back into the education system. This finding reflected optimism regarding the inclusive and flexible approach of NEP 2020 toward educational rehabilitation.

A significant majority (87%) agreed that the multiple entry and exit system would particularly benefit EWM students by allowing them to rejoin education after dropping out due to financial or social challenges. This was one of the strongest indicators of support in the survey, demonstrating that flexibility in higher education was viewed as highly inclusive.

In addition, 82% of respondents supported the establishment of Special Education Zones for disadvantaged regions, indicating confidence in targeted policy interventions for reducing regional educational inequalities.

The highest level of agreement (90%) was observed for the statement that mid-day meals along with breakfast schemes would improve student retention and participation. Respondents recognized nutritional support as a crucial factor in ensuring regular attendance and continuity of education among economically weaker students.

Overall, the findings suggested that B.Ed. students perceived NEP 2020 as a socially inclusive policy capable of improving educational opportunities for economically weaker and marginalized sections of society.

Table 03: Integration of Indigenous Traditional Knowledge (ITK) – Positive Results

Survey Statement	Agree (%)	Neutral (%)	Disagree (%)	Key Finding
Ayurveda, Yoga, Sanskrit should be part of mainstream curriculum	89%	8%	3%	Very high support for ITK

IKS division under AICTE will preserve traditional knowledge	84%	12%	4%	Positive for institutionalization
Teaching ITK in local languages will strengthen identity	87%	9%	4%	Language + ITK supported
Takshashila/Nalanda model inspires holistic education	78%	15%	7%	Historical pride is positive
Traditional arts & crafts internships will preserve heritage	86%	10%	4%	Experiential learning for ITK
Tribal ecological knowledge in science curriculum	83%	13%	4%	Inclusivity of tribal wisdom

Table 3 presented the perceptions of B.Ed. students regarding the integration of Indigenous Traditional Knowledge (ITK) under NEP 2020. The findings indicated strong support for the inclusion of Indian knowledge systems, traditional practices, and cultural heritage within mainstream education.

The results showed that 89% of respondents agreed that Ayurveda, Yoga, and Sanskrit should be included in the mainstream curriculum, while only 3% disagreed. This reflected very high acceptance of integrating traditional Indian knowledge into modern education.

Similarly, 84% of participants believed that the establishment of the Indian Knowledge Systems (IKS) division under AICTE would help preserve and promote traditional knowledge. Respondents viewed institutional support as essential for safeguarding indigenous intellectual heritage.

The study further revealed that 87% of respondents agreed that teaching ITK through local and regional languages would strengthen cultural identity and learner engagement. This finding highlighted the combined importance of language and culture in educational development.

In addition, 78% of participants stated that the educational models of Takshashila and Nalanda inspired holistic learning approaches. Although the agreement level was slightly lower compared to other statements, the majority still expressed positive attitudes toward India's historical educational traditions.

The findings also showed that 86% of respondents supported internships related to traditional arts and crafts, considering them effective for preserving cultural heritage through experiential learning methods.

Furthermore, 83% of participants agreed that tribal ecological knowledge should be integrated into the science curriculum, indicating support for inclusivity and recognition of indigenous environmental wisdom.

Overall, the findings suggested that B.Ed. students positively perceived the integration of Indigenous Traditional Knowledge under NEP 2020 as an important step toward cultural preservation, holistic education, and inclusive knowledge development.

Table 04: Overall Prosperity & Holistic Impact of NEP Implementation

Survey Statement	Agree (%)	Neutral (%)	Disagree (%)	Key Finding
NEP will increase public investment to 6% of GDP (from ~3%)	76%	18%	6%	Fiscal reform is welcomed
Technology (NETF, SWAYAM, DIKSHA) will bridge digital divide	88%	8%	4%	Very high positive for tech equity
NEP will link education directly to employment & ethics	84%	11%	5%	Holistic development supported
4-year integrated B.Ed. will improve teacher quality	81%	13%	6%	Teacher education reform positive
School Quality Assessment Framework will improve accountability	79%	14%	7%	Governance reform supported
"Vasudhaiva Kutumbakam" vision will create global citizens with Indian roots	86%	10%	4%	Strong alignment with NEP philosophy
Overall, NEP implementation will make Bharat's education system prosperous and globally competitive	90%	7%	3%	Overwhelmingly positive

The seventh survey statement (Table 4) examined the perception that NEP would increase public investment to 6% of GDP. A majority of 76% of the respondents agreed, 18% remained neutral, and 6% disagreed. This finding indicated that fiscal reform was broadly welcomed, though the agreement level (76%) was comparatively lower than other domains.

The eighth statement (Table 4) assessed whether technology platforms (NETF, SWAYAM, DIKSHA) would bridge the digital divide. An overwhelming 88% of the participants agreed, while 8% were neutral and 4% disagreed. This very high positive response (88%) demonstrated strong belief in technology-enabled learning for reducing educational disparities.

The ninth statement (Table 4) explored the perception that NEP would link education to employment and ethics. A substantial 84% of the B.Ed. students agreed, 11% remained neutral, and 5% disagreed. This result (84%) indicated that future teachers recognized the shift from rote learning to skill-based, value-oriented education.

The tenth statement (Table 4) focused on the four-year integrated B.Ed. programme. A strong 81% of the respondents agreed that this would improve teacher quality, while 13% were neutral and 6% disagreed. This finding (81%) suggested that B.Ed. students themselves validated the restructuring of their own professional training.

The eleventh statement (Table 4) assessed the School Quality Assessment Framework (SQAAF). A positive 79% of the participants agreed that it would improve accountability, while 14%

remained neutral and 7% disagreed. This finding (79%) reflected cautious optimism about governance reform.

The twelfth statement (Table 4, Statement 6) examined the "Vasudhaiva Kutumbakam" vision. A high percentage of 86% of the respondents agreed with creating global citizens with Indian roots, while 10% were neutral and 4% disagreed. This finding (86%) demonstrated strong resonance with the policy's dual emphasis.

The final statement (Table 4) assessed the holistic perception that NEP would make Bharat's education system prosperous and globally competitive. An overwhelming 90% of the B.Ed. students agreed, while only 7% remained neutral and 3% disagreed. This represented the highest agreement level (90%) across all four tables.

In summary, Table 4 revealed that agreement levels ranged from 76% to 90%. The highest support (90%) was observed for overall prosperity and global competitiveness, while the lowest but still majority support (76%) was recorded for fiscal reform.

Conflict of Interest

The authors declare that they have no conflict of interest.

Authors' Contribution

Dr. Sunita Gupta: Conceptualization of the research problem, development of theoretical framework, design of survey instrument (Section A and B), validation of thematic categorization, interpretation of results, critical revision of manuscript, and overall supervision of the study.

Dr. Kamal Kumar: Development of research methodology, design of survey instrument (Section C and D), statistical analysis using SPSS, data interpretation, writing of original draft (Materials & Methods and Results sections), manuscript review, and project administration including data collection coordination.

Both authors have read and approved the final version of the manuscript and agree to be accountable for all aspects of the work, including its accuracy and integrity.

Acknowledgements

The authors sincerely thank the B.Ed. students for their voluntary participation across three feedback rounds. We acknowledge the administration of Dinesh College of Education, Garhwa, for institutional support. Special gratitude is extended to Dr. Manoj Kumar and Smt. Rekha Kumari for their valuable guidance and encouragement throughout this study. The authors also thank the Faculty of Education, Babu Dinesh Singh University, for facilitating data collection logistics. Finally, we acknowledge all cited researchers whose prior work provided the empirical foundation for this investigation.

REFERENCES

1) Balakrishnan, V. (2021). National Education Policy 2020: Empowering emerging India through excellence in education. *Journal of Educational Planning and Administration*, 35(2), 45-62.
2) Bera, S. (2024). Holistic analysis of NEP-2020's influence on school, higher, and teacher education in India. *Indian Journal of Educational Research*, 29(1), 12-28.

3) Bhattacharya, A. (2023). Digital divide in Indian education: An analysis of NSSO data on rural-urban disparities in internet access. *Journal of Digital Learning Research*, 18(3), 201-218.
4) British Educational Research Association. (2018). *Ethical guidelines for educational research* (4th ed.). London: BERA.
5) Creswell, J. W., & Creswell, J. D. (2018). *Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approaches* (5th ed.). Thousand Oaks, CA: SAGE Publications.
6) Deshmukh, R., & Kulkarni, S. (2024). Technology integration in teacher education: Usage patterns of DIKSHA and SWAYAM platforms in Maharashtra. *Indian Journal of Educational Technology*, 12(2), 88-104.
7) Dillman, D. A., Smyth, J. D., & Christian, L. M. (2014). *Internet, phone, mail, and mixed-mode surveys: The tailored design method* (4th ed.). Hoboken, NJ: John Wiley & Sons.
8) Field, A. (2018). *Discovering statistics using IBM SPSS statistics* (5th ed.). London: SAGE Publications.
9) Fowler, F. J. (2014). *Survey research methods* (5th ed.). Thousand Oaks, CA: SAGE Publications.
10) Fullan, M. (2007). *The new meaning of educational change* (4th ed.). New York: Teachers College Press.
11) Gupta, R., & Sharma, V. (2025). Fiscal policy and education investment in India: An analysis of Union Budget allocations (2021-2025). *Journal of Public Policy and Finance*, 22(1), 34-51.
12) Kumar, N. (2021). *Research methodology in education: Principles and practices*. New Delhi: Pearson Education.
13) Kumar, P. (2023). Mother tongue instruction in Indian primary schools: Implementation challenges across five states. *Language and Education in India*, 15(2), 67-84.
14) Lawshe, C. H. (1975). A quantitative approach to content validity. *Personnel Psychology*, 28(4), 563-575.
15) Likert, R. (1932). A technique for the measurement of attitudes. *Archives of Psychology*, 22(140), 1-55.
16) Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. New Delhi: Government of India Press.
17) Nagaland University. (2026). *Proceedings of the national seminar on integration of Indian Knowledge Systems in teacher education*. Kohima: Nagaland University Press.
18) Nunnally, J. C., & Bernstein, I. H. (1994). *Psychometric theory* (3rd ed.). New York: McGraw-Hill.
19) Pallant, J. (2020). *SPSS survival manual: A step by step guide to data analysis using IBM SPSS* (7th ed.). London: Routledge.
20) Patel, M., & Mehta, R. (2025). Tribal ecological knowledge in science curriculum: Perspectives from indigenous educators in Jharkhand, Madhya Pradesh, and Odisha. *Journal of Indigenous Education*, 10(2), 45-62.

21) Podsakoff, P. M., MacKenzie, S. B., Lee, J. Y., & Podsakoff, N. P. (2003). Common method biases in behavioral research: A critical review of the literature and recommended remedies. *Journal of Applied Psychology*, 88(5), 879-903.
22) QS I-GAUGE. (2025). *National Education Policy 2020 implementation report: Progress, gaps, and institutional perspectives*. New Delhi: QS I-GAUGE Ratings & Consulting.
23) Rao, K. (2023). Longitudinal outcomes of four-year integrated B.Ed. programmes: A comparative study of pedagogical confidence among graduates. *Journal of Teacher Education in India*, 14(1), 23-41.
24) Rogers, E. M. (2003). *Diffusion of innovations* (5th ed.). New York: Free Press.
25) Sahu, A., & Sahu, M. (2024). Comparative awareness of NEP 2020 dimensions among B.Ed., M.Ed., and M.A. Education students in Chhattisgarh. *Indian Educational Review*, 52(1), 56-73.
26) Sharma, P., & Patel, K. (2024). Student perceptions of NEP 2020's skill-based education provisions: A pilot study in Ahmedabad. *Journal of Higher Education Policy and Practice*, 19(2), 34-49.
27) Shukla, N., & Trivedi, B. (2024). Teacher educators' perspectives on the four-year integrated B.Ed. programme under NEP 2020. *Journal of Educational Change and Reform*, 17(1), 78-95.
28) Singh, R., & Saxena, A. (2022). Impact of mid-day meal programmes on school attendance in India: A meta-analysis of 23 studies. *Nutrition and Education Research*, 8(3), 112-129.
29) UNESCO. (2023). *Global education monitoring report 2023: Technology in education—A tool on whose terms?* Paris: United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
30) Venkatesh, S., & Rao, D. (2024). Open schooling and NEP 2020: Enrollment trends and equity outcomes in Indian states. *Journal of Open and Distance Learning*, 11(1), 45-63.
31) World Bank. (2024). *Education finance watch 2024: Public expenditure on education across high-performing systems*. Washington, DC: The World Bank Group.

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल की कमी और अधिक जल खपत करने वाली फसलें

डॉ0 प्रभात सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
के0 बी0 पी0 जी कालेज, मीरजापुर

सारांश

भूजल की कमी भारत में, विशेष रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कृषि प्रधान क्षेत्रों में, सबसे गंभीर पर्यावरणीय और कृषि चुनौतियों में से एक बनकर उभरी है। भूजल सिंचाई पर बढ़ती निर्भरता, साथ ही गन्ना और धान जैसी अधिक जल खपत करने वाली फसलों की खेती के कारण भूजल स्तर में तेजी से गिरावट आई है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जो अपनी उपजाऊ जलोढ़ मैदानों और उच्च कृषि उत्पादकता के लिए जाना जाता है, सिंचाई के लिए ट्यूबवेल और बोरवेल पर बहुत अधिक निर्भर है। पिछले कुछ दशकों में, भूजल के अत्यधिक दोहन से पारिस्थितिक असंतुलन पैदा हुआ है, खेती की लागत बढ़ी है और दीर्घकालिक जल सुरक्षा को खतरा पैदा हुआ है। यह शोध पत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल की कमी और अधिक जल खपत करने वाली फसलों की खेती के बीच संबंध का अध्ययन करता है। यह पत्र भूजल संकट से संबंधित कारणों, प्रभावों, सामाजिक–आर्थिक परिणामों, पर्यावरणीय प्रभावों और नीतिगत प्रतिक्रियाओं का पता लगाता है। यह भूजल तनाव को बढ़ाने में कृषि पद्धतियों, सिंचाई प्रणालियों, सरकारी नीतियों, जलवायु परिवर्तनशीलता और तकनीकी परिवर्तनों की भूमिका का भी विश्लेषण करता है।

अध्ययन में फसल विविधता, वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई तकनीक, भूजल पुनर्भरण और बेहतर जल प्रबंधन जैसे सतत समाधानों पर भी चर्चा की गई है। शोधपत्र का निष्कर्ष यह है कि तत्काल हस्तक्षेप के बिना, भूजल की कमी पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कृषि उत्पादकता, ग्रामीण आजीविका और पारिस्थितिक स्थिरता को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती है।

मुख्य शब्दः भूजल का उपयोग, अधिक जल खपत करने वाली फसलें, गन्ना, धान, सिंचाई, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, भूजल संकट, सतत कृषि।

प्रस्तावना

1.1 अध्ययन की पृष्ठभूमि

भूजल विश्व भर में कृषि, घरेलू उपभोग और औद्योगिक गतिविधियों को सहारा देने वाले सबसे मूल्यवान प्राकृतिक संसाधनों में से एक है। भारत में, भूजल कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि सिंचाई का एक बड़ा हिस्सा ट्यूबवेल और बोरवेल पर निर्भर करता है। हरित क्रांति ने उच्च उपज वाले बीजों, उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई विस्तार के माध्यम से कृषि उत्पादकता में वृद्धि की। हालांकि, इस विकास के परिणामस्वरूप भूजल का अत्यधिक दोहन भी हुआ। पश्चिमी उत्तर प्रदेश उत्तरी भारत के सबसे

अधिक कृषि विकसित क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र में मेरठ, मुजफ्फरनगर, शामली, सहारनपुर, बागपत, बुलंदशहर और गाजियाबाद जैसे जिले शामिल हैं। उपजाऊ मिट्टी, अनुकूल जलवायु परिस्थितियां और गंगा और यमुना जैसी नदियों की उपस्थिति गहन कृषि को बढ़ावा देती है। इस क्षेत्र के किसान गन्ना, गेहूं, चावल और सब्जियां जैसी फसलें उगाते हैं। इन फसलों में से गन्ना और धान अत्यधिक जल–गहन हैं। गन्ने को वर्ष के अधिकांश समय सिंचाई की आवश्यकता होती है, जबकि धान की खेती के लिए बड़ी मात्रा में स्थिर जल की आवश्यकता होती है। इन फसलों की बढ़ती खेती के कारण किसान बिजली और डीजल से चलने वाले ट्यूबवेलों के माध्यम से भारी मात्रा में भूजल का दोहन करते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल स्तर में काफी गिरावट आई है। कई क्षेत्रों में, जो किसान पहले उथले पानी से जल प्राप्त करते थे, उन्हें अब गहरे बोरवेल खोदने पड़ रहे हैं। इससे ऊर्जा की खपत, सिंचाई की लागत और पर्यावरणीय तनाव में वृद्धि हुई है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल संकट न केवल एक पर्यावरणीय मुद्दा है, बल्कि एक सामाजिक–आर्थिक समस्या भी है। छोटे और सीमांत किसान विशेष रूप से प्रभावित हैं क्योंकि वे महंगे गहरे ट्यूबवेल और आधुनिक सिंचाई प्रणालियों का खर्च वहन नहीं कर सकते। इसके अलावा, भूजल की कमी भविष्य की खाद्य सुरक्षा, पेयजल की उपलब्धता और पारिस्थितिक संतुलन के लिए खतरा है। इसलिए, भूजल की कमी और अधिक जल की खपत करने वाली फसलों के बीच संबंध को समझना सतत कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।

अध्ययन के उद्देश्य

- पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल स्तर में कमी की सीमा का पता लगाना।
- भूजल दोहन में गन्ने और धान जैसी अधिक जल खपत करने वाली फसलों की भूमिका की पहचान करना।
- सिंचाई पद्धतियों और भूजल संसाधनों पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करना।
- भूजल स्तर में कमी के सामाजिक–आर्थिक और पर्यावरणीय परिणामों का अध्ययन करना।
- सरकारी नीतियों और जल प्रबंधन रणनीतियों का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना

गन्ने और धान जैसी अधिक जल खपत करने वाली फसलें पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल स्तर में कमी का प्रमुख कारण हैं।

अध्ययन का महत्व

यह अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भूजल कृषि की स्थिरता और ग्रामीण आजीविका के लिए आवश्यक है। यह शोध जल के अस्थिर उपयोग के पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक परिणामों पर प्रकाश डालता है। इसके निष्कर्ष नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं, पर्यावरणविदों और किसानों को भूजल संरक्षण के महत्व को समझने में सहायक हो सकते हैं। यह अध्ययन सिंचाई प्रबंधन, फसल विविधीकरण और टिकाऊ कृषि से संबंधित भविष्य की नीति नियोजन में भी योगदान दे सकता है। यह अध्ययन मुख्य रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश, विशेष रूप से उन जिलों पर केंद्रित है जहां गन्ना और धान की खेती प्रमुख कृषि गतिविधियां हैं। यह शोध कृषि सिंचाई के कारण भूजल स्तर में कमी का विश्लेषण करता है और इसके पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक प्रभावों पर चर्चा करता है।

साहित्य समीक्षा

भूजल की कमी का मुद्दा शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और पर्यावरण संगठनों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। कई अध्ययनों में गहन कृषि और भूजल दोहन के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है।

भूजल और कृषि विकासः शोधकर्ताओं ने पाया है कि हरित क्रांति के बाद भारत की कृषि वृद्धि में भूजल सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भूजल की आसान उपलब्धता ने किसानों को कई फसलें उगाने और उत्पादकता बढ़ाने में सक्षम बनाया। हालांकि, भूजल पर अत्यधिक निर्भरता के कारण कई राज्यों में जलस्तर में गिरावट आई है। अध्ययनों से पता चलता है कि पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश सहित उत्तर–पश्चिमी भारत में गहन कृषि पद्धतियों के कारण भूजल का गंभीर संकट है।

अधिक जल खपत करने वाली फसलें और सिंचाईः कई शोधकर्ताओं ने गन्ने और धान को प्रमुख जल खपत करने वाली फसलों के रूप में पहचाना है। गन्ने को लंबे समय तक निरंतर सिंचाई की आवश्यकता होती है, जबकि धान की खेती में खेतों में पानी जमा रहता है। कृषि अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी), चीनी मिल खरीद और बिजली सब्सिडी जैसी सरकारी सहायता प्रणालियाँ किसानों को अधिक जल खपत करने वाली फसलों की खेती जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

उत्तर प्रदेश में भूजल संकटः केंद्रीय भूजल बोर्ड और पर्यावरण संस्थानों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल स्तर में पिछले दशकों में काफी गिरावट आई है।शहरीकरण, औद्योगीकरण और जलवायु परिवर्तनशीलता ने भूजल पुनर्भरण को और कम कर दिया है।

सतत जल प्रबंधनः शोधकर्ताओं ने कई समाधान सुझाए हैं, जिनमें शामिल हैंः फसल विविधता, ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई, वर्षा जल संचयन, कृत्रिम पुनर्भरण प्रणाली, जल मूल्य निर्धारण सुधार, किसान जागरूकता कार्यक्रम आदि भूजल संकट को कम करने के लिए इन उपायों को आवश्यक माना जाता है।

हालांकि भारत में भूजल की कमी पर कई अध्ययन किए गए हैं, लेकिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक जल खपत करने वाली फसलों और सिंचाई पद्धतियों के संयुक्त प्रभाव पर विशेष रूप से केंद्रित शोध सीमित हैं। यह अध्ययन कृषि पद्धतियों, सामाजिक–आर्थिक प्रभावों और सतत समाधानों का विश्लेषण करके इस अंतराल को भरने का प्रयास करता है।

शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध डिज़ाइन पर आधारित है। इसमें गुणात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण के माध्यम से भूजल स्तर में कमी और जल–गहन फसलों के बीच संबंध का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

यह शोध पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निम्नलिखित जिलों को कवर करता हैः मेरठ, मुजफ्फरनगर, शामली, सहारनपुर, बागपत, बुलंदशहर, गाजियाबाद ये जिले गन्ने और धान की सघन खेती के लिए जाने जाते हैं।

आकड़ो के स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक आकड़ो के रूप में किसान साक्षात्कार, प्रश्नावली, क्षेत्रीय अवलोकन, कृषि अधिकारियों के साथ चर्चा तथा द्वितियक आकड़ो के रूप में सरकारी रिपोर्ट, कृषि सांख्यिकी, शोध पत्रिकाएँ, अखबार, पर्यावरण रिपोर्ट आदि का प्रयोग किया गया है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल संसाधन का उपयोग

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सिंचाई का प्राथमिक स्रोत भूजल है। किसान भूजल पर निर्भर हैं क्योंकि यह वर्षा जल की तुलना में अधिक सुलभ और विश्वसनीय है। भूजल निम्नलिखित कार्यों में भी सहायक हैः पेयजल आपूर्ति, पशुधन की आवश्यकताएँ, औद्योगिक उपयोग, घरेलू गतिविधियाँ आदि। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कभी

नहर सिंचाई प्रमुख थी, लेकिन धीरे–धीरे ट्यूबवेल सिंचाई का प्राथमिक स्रोत बन गए। ट्यूबवेल किसानों को सिंचाई के समय और फसल प्रबंधन पर नियंत्रण प्रदान करते हैं। हालांकि, अनियंत्रित जल निकासी से भूजल का स्तर तेजी से घट रहा है। कई जिलों में भूजल स्तर में काफी गिरावट आई है। जो किसान पहले उथले पानी से जल प्राप्त करते थे, उन्हें अब गहरे बोरवेल की आवश्यकता है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जल की अत्यधिक खपत करने वाली फसलें

जल की अत्यधिक खपत करने वाली फसलें वे फसलें हैं जिन्हें वृद्धि और उत्पादन के लिए बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, सघन कृषि और भूजल की आसान उपलब्धता ने ऐसी फसलों की खेती को बढ़ावा दिया है। ये फसलें इस क्षेत्र में भूजल स्तर में कमी के प्रमुख कारणों में से एक हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जल की अत्यधिक खपत करने वाली प्रमुख फसलें

1. गन्नाः गन्ना पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सबसे महत्वपूर्ण और व्यापक रूप से उगाई जाने वाली जल–गहन फसल है। अधिक जल उपयोग का कारण प्रमुख रूप से गन्ने की फसल लगभग 10–18 महीने लंबी होना है। इसे पूरे वर्ष बार–बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। उच्च तापमान के कारण खेतों से जल का वाष्पीकरण बढ़ जाता है। गन्ना उत्पादक प्रमुख जिले मे मुजफ्फरनगर, मेरठ, शामली, सहारनपुर, बागपत है। आर्थिक लाभों के बावजूद, गन्ना भूजल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डालता है।

2. धान (चावल): धान एक अन्य प्रमुख जल–खपत करने वाली फसल है जिसकी खेती पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में की जाती है। अधिक जल उपयोग के कारण धान के खेतों को फसल चक्र के अधिकांश समय में स्थिर जल की आवश्यकता होती है। जिसके लिये सिंचाई का आमतौर पर उपयोग किया जाता है। लगातार सिंचाई से भूजल दोहन बढ़ता है। लगातार सिंचाई के लिये ट्यूबवेलों पर बढ़ती निर्भरता से भूजल स्तर में तेजी से गिरावट होती है।

3. गेहूँ: गेहूँ भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण सिंचित फसल है। हालांकि गेहूं गन्ने और धान की तुलना में कम पानी का उपयोग करता है, लेकिन बड़े पैमाने पर खेती और सर्दियों के दौरान बार–बार सिंचाई से भूजल की खपत बढ़ जाती है।

भूजल का क्षरण

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सिंचाई, घरेलू उपयोग और औद्योगिक गतिविधियों के लिए भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के कारण भूजल का स्तर कम होना एक गंभीर पर्यावरणीय और कृषि समस्या बन गया है। यह क्षेत्र गन्ना, धान और गेहूं जैसी जल–गहन फसलों के लिए जाना जाता है, जिन्हें पूरे फसल चक्र में बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। अपर्याप्त वर्षा वितरण और सीमित सतही सिंचाई सुविधाओं के कारण किसान ट्यूबवेल और बोरवेल पर अत्यधिक निर्भर हैं। तीव्र जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और बढ़ती औद्योगिक मांग ने भूजल संसाधनों पर दबाव और बढ़ा दिया है। परिणामस्वरूप, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई जिलों में जलस्तर लगातार गिर रहा है, जिससे भूजल की उपलब्धता कम हो रही है और उसका दोहन महंगा होता जा रहा है।

भूजल के स्तर में कमी ने इस क्षेत्र में कई सामाजिक–आर्थिक और पर्यावरणीय समस्याएं पैदा कर दी हैं। किसानों को गहरे बोरवेल खोदने और बिजली की खपत बढ़ने के कारण सिंचाई की लागत में वृद्धि का सामना करना पड़ रहा है, जिससे कृषि लाभप्रदता प्रभावित होती है और ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ती है। कुछ क्षेत्रों में, भूजल स्तर में गिरावट से मिट्टी की उर्वरता भी कम हो गई है और पानी की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिसमें फ्लोराइड और आर्सेनिक का प्रदूषण शामिल है। पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में तालाबों और आर्द्रभूमियों का सूखना और नदियों के प्रवाह में कमी आना शामिल है, जो स्थानीय जैव विविधता और

पारिस्थितिकी तंत्र के लिए खतरा पैदा करते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए सरकार ने सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों को बढ़ावा देना, वर्षा जल संचयन, फसल विविधीकरण और भूजल पुनर्भरण परियोजनाओं जैसे उपाय शुरू किए हैं। हालांकि, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सतत भूजल प्रबंधन प्राप्त करने के लिए प्रभावी कार्यान्वयन और जन जागरूकता आवश्यक हैं।

गन्ना, धान और गेहूं जैसी अधिक जल खपत करने वाली फसलें पश्चिमी उत्तर प्रदेश की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, लेकिन ये भूजल स्तर में कमी का भी प्रमुख कारण हैं। भूजल संसाधनों की रक्षा और दीर्घकालिक कृषि स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए स्थायी कृषि पद्धतियां, फसल विविधीकरण और कुशल सिंचाई प्रणालियां आवश्यक हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सतत कृषि

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सतत कृषि का उद्देश्य मिट्टी, जल और जैव विविधता जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ कृषि उत्पादकता को बनाए रखना है। यह क्षेत्र कृषि पर अत्यधिक निर्भर है, विशेष रूप से गन्ना, गेहूं और चावल जैसी फसलों की खेती पर। हालांकि, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और भूजल के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी का क्षरण और जल की कमी सहित पर्यावरणीय चुनौतियां उत्पन्न हो गई हैं। पर्यावरणीय क्षति को कम करने और मिट्टी के दीर्घकालिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए फसल चक्र, जैविक खेती, एकीकृत कीट प्रबंधन और जैव उर्वरकों के उपयोग जैसी सतत कृषि पद्धतियों को तेजी से बढ़ावा दिया जा रहा है। जल की बर्बादी को कम करने और जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए ड्रिप और स्प्रिंकलर सिस्टम जैसी कुशल सिंचाई विधियों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

सतत कृषि को अपनाने से पश्चिमी उत्तर प्रदेश में किसानों की आय और पर्यावरणीय स्थिरता में सुधार हो सकता है। दालों, तिलहन, फलों और सब्जियों की खेती सहित फसल विविधीकरण से जल–गहन फसलों पर निर्भरता कम होती है और फसल खराब होने का जोखिम कम होता है। सरकारी पहल और कृषि विस्तार कार्यक्रम पर्यावरण के अनुकूल कृषि पद्धतियों से संबंधित प्रशिक्षण, सब्सिडी और जागरूकता अभियानों के माध्यम से किसानों का समर्थन कर रहे हैं। सतत कृषि ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके और भूजल संसाधनों का संरक्षण करके जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता में भी योगदान देती है। यद्यपि जागरूकता की कमी, उच्च प्रारंभिक निवेश और पारंपरिक कृषि पद्धतियों जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, लेकिन सतत कृषि पद्धतियों को धीरे–धीरे अपनाने से इस क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है।

सामाजिक–आर्थिक प्रभाव और सरकारी नीतियां

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल स्तर में कमी ने किसानों और ग्रामीण समुदायों के लिए गंभीर सामाजिक–आर्थिक समस्याएं पैदा कर दी हैं। गन्ने और धान जैसी अधिक पानी की खपत करने वाली फसलों के लिए भूजल के अत्यधिक उपयोग से जलस्तर नीचे चला गया है, जिससे किसानों को गहरे बोरवेल खोदने और बिजली, डीजल और सिंचाई उपकरणों पर अधिक खर्च करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। छोटे और सीमांत किसान सबसे अधिक प्रभावित हैं क्योंकि वे अक्सर महंगी सिंचाई प्रणालियों का खर्च वहन नहीं कर सकते। गिरता भूजल स्तर फसल उत्पादकता को भी कम करता है, किसानों पर कर्ज बढ़ाता है और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक असुरक्षा पैदा करता है। कुछ गांवों में, पानी की कमी के कारण पलायन, बेरोजगारी और पीने के पानी की कमी हो गई है, खासकर गर्मियों के महीनों में। सूखते तालाब, मिट्टी का क्षरण और पारिस्थितिक असंतुलन जैसी पर्यावरणीय समस्याओं ने ग्रामीण आजीविका और कृषि स्थिरता को और भी प्रभावित किया है।

भूजल संकट से निपटने के लिए, सरकार ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कई नीतियां और पहलें शुरू की हैं। ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों का उद्देश्य पानी की बर्बादी को कम करना और सिंचाई दक्षता में सुधार करना है। फसल विविधीकरण योजनाएं किसानों को अधिक पानी की खपत करने वाली फसलों से बाजरा, दालों और तिलहन की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अटल भूजल योजना और जल शक्ति अभियान जैसी सरकारी पहल भूजल संरक्षण, वर्षा जल संचयन और जल प्रबंधन में सामुदायिक भागीदारी पर केंद्रित हैं। केंद्रीय भूजल बोर्ड भूजल स्तर की निगरानी करता है और अधिक दोहन वाले क्षेत्रों की पहचान करता है। हालांकि, कमजोर कार्यान्वयन, जागरूकता की कमी और गन्ने और धान की खेती पर निरंतर निर्भरता भूजल स्तर में कमी को नियंत्रित करने में प्रमुख चुनौतियां बनी हुई हैं।

निष्कर्ष

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भूजल का क्षरण एक गंभीर पर्यावरणीय, कृषि संबंधी और सामाजिक–आर्थिक चुनौती बन गया है। गन्ने और धान जैसी अधिक जल खपत करने वाली फसलों की अत्यधिक खेती और ट्यूबवेल सिंचाई पर अत्यधिक निर्भरता के कारण इस क्षेत्र में भूजल स्तर में काफी गिरावट आई है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि, सब्सिडी वाली बिजली, अक्षम सिंचाई पद्धतियाँ और कमजोर भूजल विनियमन ने इस संकट को और भी गंभीर बना दिया है। भूजल स्तर में गिरावट के कारण किसानों को सिंचाई की बढ़ती लागत, कृषि उत्पादकता में कमी, आर्थिक तनाव और खेती एवं घरेलू उपयोग दोनों के लिए पानी की कमी का सामना करना पड़ रहा है।

यद्यपि ये फसलें पश्चिमी उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, लेकिन इनका दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रभाव गंभीर और अस्थिर है। सूक्ष्म सिंचाई, वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण कार्यक्रम और फसल विविधीकरण जैसी सरकारी पहलें इस समस्या के समाधान की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। हालांकि, भूजल संसाधनों के संरक्षण के लिए मजबूत नीति कार्यान्वयन, किसानों में जागरूकता और टिकाऊ जल प्रबंधन पद्धतियाँ आवश्यक हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कृषि और ग्रामीण आजीविका का भविष्य कृषि विकास और भूजल संरक्षण के बीच संतुलन बनाने तथा अधिक टिकाऊ कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देने पर निर्भर करता है।

संदर्भः

1. Central Ground Water Board (CGWB) – Reports and data on groundwater levels, depletion, and water resource management in Uttar Pradesh.
2. Ministry of Jal Shakti, Government of India – Information on groundwater conservation policies and water management programs.
3. NITI Aayog – "Composite Water Management Index" reports discussing groundwater stress and agricultural water use in India.
4. Indian Council of Agricultural Research (ICAR) – Research publications on sustainable agriculture, irrigation, and crop water requirements.
5. International Water Management Institute (IWMI) – Studies related to groundwater use and irrigation practices in northern India.
6. Food and Agriculture Organization (FAO) – Resources on sustainable water use and water-intensive crops.

7. Shah, Tushaar. Groundwater and Human Development: Challenges and Opportunities in Livelihoods and Environment. Oxford University Press, 2007.
8. Rodell, M., Velicogna, I., & Famiglietti, J. S. "Satellite-based estimates of groundwater depletion in India." Nature, 460(7258), 999–1002, 2009.
9. Kumar, M. Dinesh, and Tushaar Shah. "Groundwater Pollution and Irrigation Agriculture in India." Economic and Political Weekly, Vol. 39, No. 3, 2004.
10. Government of Uttar Pradesh. Department of Agriculture reports on irrigation, sugarcane cultivation, and crop diversification policies. Department of Agriculture, Uttar Pradesh

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

Khajuraho: A Site of Architectural Splendors

Sanjay Singh,
Research Scholar, History
Prof. Santosha Kumar
History, U.P.R.T.O.U. Prayagraj

Abstract
Introduction: Khajuraho, an ancient city located in the north flank of Madhya Pradesh. The city is historically important and iconic in its architecture. This town was established and habituated by the Chandels of the region. They were rulers of 'Jejakabhukti' (Bundelkhand) who turned this as their first capital city. Chandel ruled the region from 9th to 13th century effectively. During this period, they patronized art and culture and built some unbelievable structures. In their structures includes forts, gadis, ponds, temples, sculptures, epigraphs etc. but most resonating praise of their works emanates from temples built at various places ie- Khajuraho, Mahoba, Ajaygarh, Dudhai, Jhansi, Jhatkari, Kalinjar etc. temples of Khajuraho probably where best art work not only in Jejakbhukti but in contemporary Bharatvarsh. These temples were designed and planned in Nagara style of temple building. Some of them have 'Panchayatan' arrangement. There temples belong to various sects and religions. Most of the temples has association with Vaishnavite and Shaivite sect of Hinduism, but temples of Shakt(Durga) , Surya(son), and Jaina also built. Architectural survey suggest that Khajuraho had more than ninety temples that lost in the blow of natural forces. Some of them destroyed by foreign invaders. Currently around thirty temples standing intact or with minor alteration. Archaeological Survey of India (ASI) protecting and maintaining rich heritage of Khajuraho along which UNESCO efforts.
The temples in Khajuraho have a treasure of sculpture and motifs. Conception and implementation of complex art forms with absolute precision and skill makes this art work unique and incomparable in the world. The structural design and decoration attract many enthusiastic to experience the wonder in many ways. Some are interested architecture, some in devotion, some in exotic imagery and some in holistic experience. These temples have rich carving and polishing on stones placed at both interior and exterior walls. The theme of these idols, statues and decoration influenced by religious believes, human activities, animals and sexual desires. Khajuraho have three group of monuments ie- western, south eastern and southern. Some notable temples are – Kandariya Mahadev temple, Laxman temple, Viswanath temple, Parasanath Jain temple, Varaha Temple, etc. Khajuraho located 26 km east from Chhatarpur and 45km south to Mahoba.
Objectives: this work is designed to relook the rich heritage of Khajuraho that will help us to understand the contemporary situation of medieval history indirectly. This will also help in further

compare the architectural differences and evolution of temple buildings. It will inspire our future generations to remember out rich past and preserve it. History of local rulers often ignored in the past that can be corrected by further research on the such topics.

Methodology: it will to appropriate to use historical research method along with on-site survey and personal experience of Khajuraho temples.

Keywords: Khajuraho, Temples, Architecture, Kandariya Mandir

Temples and their Architecture in Khajuraho

As we discussed initially Khajuraho had more than 90 temples in the past but over the time many of them lost their glory to rubble and remains, still there are nearly 30 structures intact and standing in its original form. Observing these remains and standing structures give us valuable insight of cultural and architectural aspects of Chandel's period. Understand the nature of temples, design of the temples and vision behind building these temples we need to look at the remains, epigraphical records and contemporary textual references. Additionally, direct observation of these structures will solidify our knowledge on the architectural excellences post 9th century in the Khajuraho.

The temples in Khajuraho built using granite and sandstone, some initial temples were granite made. for example- Chaushath Yogini Temple. But, later on this trend blend with partial of mixed use of sandstone.[1] For example- the Brahma temple and Lalguan temples. Sandstone used extensively to build later temples in the town. The temples here followed 'nagara style' of temples construction. In which, elongated Sikharas, Panchayatan structure along with 'Garbhagriha', 'Antarala', 'Mandapa', 'Ardhmandapa' were some prime features.

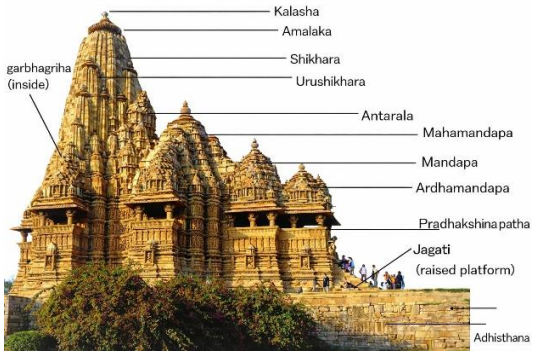

Pic : Nagara style structure

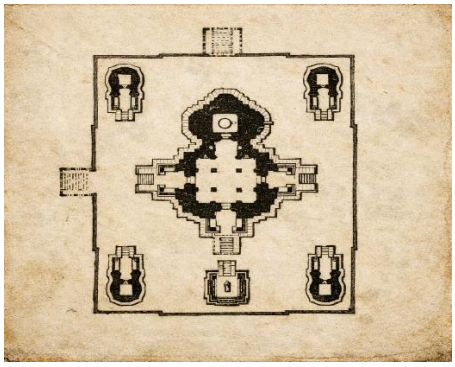

Fig. Bird eye view of temple structure

Apart from common features The Viswanath and Kandariya Mahadev temple have distinctive elements, namely 'Mahamandapa' and 'Pradakshinapath' surrounding Garbhagriha. Secondly, The Mahamandapa was largest part of structure enclosed on all sides except the entrance or 'Torana'. Here in Khajuraho, most of the temples built in the line of 'Panchayatan style' where

[1] Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd, p 10

one primary deity surrounded by four others deities in four corners of the main shrine.[2] This layout of multiple Gods shrine signifies the view of single divine reality.

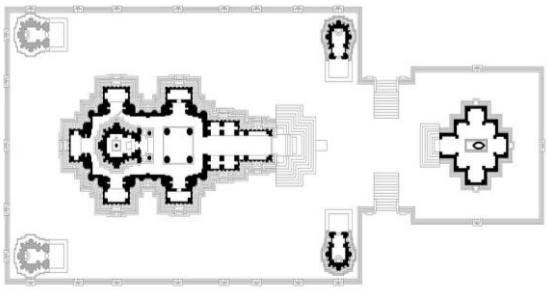

Fig: Panchayatan style temple (Viswanath temple, Khajuraho)

In the count of common features of temples, doorways were more like ivory carving, or even a hanging drapery chiseled Stone. The temples were placed on an uplifted platform or 'Jagati' those have a series of ornamental molding running horizontally. The identical design of all the temples shows the command and hallmarking of temple. James Fergusson observation of these temples expressed in words as "*They must have been erected in an age of extreme toleration when any rivalry that existed must only have been among the or architect in trying who could produce the most beautiful and most exquisitely adorned buildings*."[3]

Herewith, I will try to look at the uniqueness and exceptional features of the Chandela's built temples especially in Khajuraho and near villages. These temples were built over the timespan of almost three centuries (900CE to 1200CE) effectively in the reign of Chandelas of Jejakabhukti. The inscriptions found in the temple complex will be beneficial to account the detail description of temple ie - vision behind temple, period of construction builders, architect, sectorial orientation.

Description of important temples and architectural

As quoted earlier, Khajuraho once adorned more than 85 temples, of which nearly two-third of all gone dismayed by human negligence and natural catastrophe. The remaining temples are being protected by ASI along with UNESCO's help and guidance as a part of world heritage site. At present, ever standing structures give us more solid and minute detail of architectural skillfulness of temples. The Temples here classified by ASI in three groups-

Classification of temples



[2] वर्मा, डॉ0 महेंद्र , चंदेल कालीन कला और संस्कृति , 1992, रमानंद वद्याभवन , नई दिल्ली , पेज 33-44

[3] Fergusson , James, A History of Indian and Eastern Architecture, vol ii , p 49.

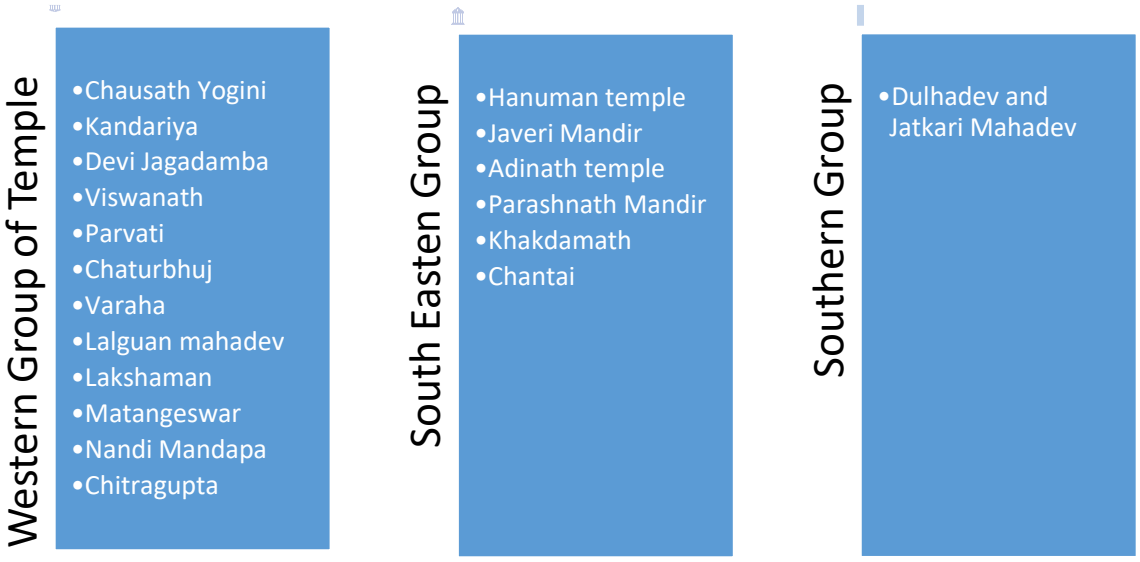

Another classification can be made on the basis of thematic and sectorial orientation of these temples-

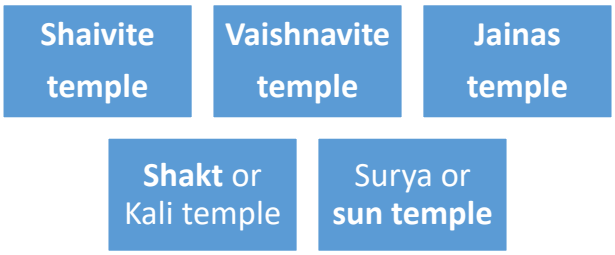

The detail description and architecture along with decorative sculpture, motifs, believes will be discussed separately of some most important structures of Khajuraho.

Chausath Yogini Temple

This is wholly a granitic made temple situated in the western group of temples and southwest of ‘’Shivsagar lake’. This is considered an earliest temple of Chandels here. The temple is made on a lofty platform of granite blocks which is spread in the area of 104 x 60 feet.[4] In the rectangular shape of this temple there are 65 small shrines at the top of platform collectively known as Chausath Yoginis shrines. Out of these 65 female goblins (Yognis) one chief shrines and in the centre facing north is surrounded by 64 others alongside. This temple lacks any single Mandapa or Garbhagriha but stone carved statues of yoginis place in a stone block made semi open mandapa for each. Some scholars believe that this temple has three extra shrines ie Mahishasurmardini, Maheswari, Brahmani (trinity of geddess).[5] The chief shrine is dedicated to Kali whose idol is

[4] वर्मा, डॉ0 महेंद्र , बुंदेलखंड की वास्तुकला , 2003, भारतीय कला प्रकाशन , पेज 129

[5] Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala’s sons & co. pvt. Ltd, pp 11-12

missing from the temple. The temple has no sikharas or roof except the semi open small blocks of yoginis. Currently this semi broken structure is being protected under ASI domain. it is suggested that this temple built before Yasovarmana's (CE925 to CE950) and later on last half of 9th century.



Fig. Chausath Yogini Temple at the south of western group of temples in Khajuraho

Kandariya Mahadev Temple

This is undoubtedly the finest and iconic temples in Khajuraho. Kandariya Mahadev name itself suggested that this temple is dedicated to Lord Shiva. The temple is believed to be built in early 11th century probably, in the Ganda's period (1002-1024 CE). As usually temple built on an uplifted platform called 'Adhisthana' which was measured about thirteen feet of height. The dimension of temple stood at 102 x 102 x 67 feet (length x height x and width). The adhisthana has two rows of decorative work depicting procession warriors, Hunters, Dancers, Musicians, Worshippers, and exotic figurines.[6]

The sanctum sanctorum of Temple had a marble linga of 4 feet height which has disappeared at present. The walls in both interior and exterior along with Toranas (gateways) are highly decorated with the sandstone carved statues, idols motifs etc. Exterior walls of temple engraved with figures of spiritual and humanly subjects, but interior completely dedicated to religious characters like-Gods, Goddesses, and mythological stories. Alexander Cunningham counted the figures on temples to 872, of which 226 placed inside and 646 placed outside the walls of the temples. Major figures belong to Siva, Parvati, Ganesha, Apsaras, Sura-Sundaris, Mithuna exotic Sculptures, public figures etc.

If we look at the design of temple , it is facing to east which has highly docarated entrance and ornate Makaratorana of five loops. The door of the cella has largest number of Sakhas which are lavishly decorated. The structure of Temple Follows Nagara styles, where entrance followed by Ardhamanapa, Mandapa, Mahamandapa, Antaral and Garbhagriha. The Garbhagriha has a surrounded Pradakshinapath equipped with artistic works both side of pass. There is a highest sikhara over the sanctum and other small sikhara on the other part of temple. The Sikharas have a Amalaka and Kalasha on the top. The sub sikharas called Urushringa, are secondary structure erected on major sikhras. Antaral (vestibule) is the gap between Gharbhagriha and Mahamandapa which is used to perform the worship of Linga.

The temple was made using fine granite stone sandstone which was an ideal matter to carved icons and statues. This excellency of art work can be seen in the intrinsically carved , policed and furnished sculptures.

Another striking feature of this temple is figurine of human of affairs in which exotic and sexual sexually engaged figures extensively incised on the outer wall of temple. Some intellectual found

[6] ibid, p 12

these sculptures obscene, vulgar and inappropriate, others opined for the depiction of very truth of life. Exotic depiction on temple shows the holistic perspective of life. It is very spiritual and religious when we saw them with a neutral perspective. India has a deep history of 'Kama' literature in the ancient texts, but overtly depiction triggers many. It need to look with the human and materialistic perspective. Dr Pramod Chandra interprets exotic sculptures as an exhibition of religious rites and a practices kola and Kapalika sect.[7] On the other hand these Mithuna icons are interpreted as symbolizing the spiritual ecstasy merging with divinity. In the view of many religious scholars, images are contentious on the temple.



Fig. Kandariya Mahadev (pic credit – swadesi.com)



fig. Iconography on the wall

Laxman Temple

The temple has intact Adhisthana with the beautifully decorated scenery of material and spiritual world. The temple is dedicated to vaikunthaVishnu. The idole of Vishnu rarely holds three heads-central human face, to right Varaha and Narsimha in the left. This configuration symbolizing the universal form of Vishnu. This temple is esthetically attractive and contains many soul hitting scenes ie- women with a child, woman writing letter and woman looking into the mirror are exceptional work. The temple's dimensions spread in 98 x 45.3 feet range.[8] The temple made of fine-grained sandstone and pink sandstone. Looking inside, the interior with Lathe turned pillars, floral designs and divine images. while exteriors walls are beautified with mythological figures, figures human processions, musicians and maithuna figures. The inside strips of sanctum have finely engraved sceneries of Krishna leela, Kubja episode, Putna reference etc. the structural design is identical to kandariya Mahadev. Near this temple an epigraph found that suggests king Yasovarman (924-950 CE) constructed and install an image of Vaikuntha Vishnu he received from the Devpala of Kannuja after defeating him.

Mahadeva Temple

[7] Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd, p 153

[8] Ibid , p 14

This temple is standing tall in the mid of Kandariya and Jagdamba temples. It has somehow similar structural to Kandariya, small in size. The temple placed on a jagati or raised platform. The main deity is Shiva, along with Brahma in right and Vishnu in left in the sanctum. The Mandapa is richly decorated with figures in which a loin statue and kneeling human figure is eye catching.

Devi Jagdamba Temple

The temple is situated in north of Kandariya, which is dedicated to Devi Jagadamba. Originally, it was a Vishnu temple where an unfinished image of Goddess Ganga or Parvati is placed. This could have happened got missed from the temple due to historical wrongs. The temple is largely based on nagara style but, mandapa and Pradha-goddesses, sura-sundaries, and maithuna appearing alive. Dimensions recorded 70 x 50 feet which is expected to build in the latter half of 11th century.

Varaha Temple

This temple is dedicated to Varaha (the Boer), which signifies the Varaha incarnation of lord Vishnu. It is situated to the east of Chaturbhuj temples. The temple has a 12 pillared pyramidical roof. The shrine has a monolithic colossal statue of Varaha made of granite and highly polished and engraved which tiny images on it.



Fig: Varaha bust in Varaha temple of Khajuraho

Pic credit- esamskriti.com

Viswanatha Temple

This temple is spread in the dimension of 89 x 46 x 103 feet (L x W x H) in the east of Shivsagar lake. This is considered identical to Kandariya Mahadeva and have panchayatan structure. on the gateway of garbhagriha, a figure of Nandi sitting Shiva in centre and Brahma and Garuna board Vishnu in the right and left direction respectively. Decoration is as usual to another temple in the group. An epigraph found here mentions Dhanga (950-1002CE) as the patron who installed two lings of stone and emerald each. The emerald linga is mission from the temple.[9]

Chitragupta Temple

The temple lies in the near to Jagadamba Temple, and similar in planning, design, decoration and finishing. It had been built in the area of 75 x 56 ft. the sanctum has a 5.8 feet height Sun (Surya Deva) statue placed here is appealing and attractive. Dandi and Pingala statues standing in sides of main figure.

Matangeshwara Temple

[9] वर्मा, डॉ0 महेंद्र , बुंदेलखंड की वास्तुकला , 2003, भारतीय कला प्रकाशन , पेज 115 and Vidya Prakash, pp 13-14

It is mainly a Shiva temple' which is considered an early made temple in the western group of temples. This temple is simple in design and exhibits figureless walls. The Garbhagriha has a memmoth sized linga (4 feet dimension and 8 feet high). The roof of the temple is pyramidical in triangular shape. it is noted that this is only temple in Khajuraho which is currently open for worship to devotee of shiva and usually has highly crowded complex.

Chaturbhuj Temple

This temple enshrines a colossal image of four headed Lord Vishnu, who is standing in 'Tribhanga mudra' (three bended body). Uniquely, this is a west facing temple as against the general tradition of facing east. The temple absent any sculpture on its Jangha and Adhisthana, but walls have three bands of depiction as usual.

Nandi Mandapa

This is a couple temple Viswanatha temple which is dedicated to Shiva mount (the Vahana). It has a 6 x 7 ft. Nadni statue below a acute stupa shape Sikhara.

Other temples in Karo Khajuraho

Lalaguan Mahadev Temple

This is granite and sandstone made temple, a simple and plain temple which lacks any decoration. It shares the Chaturbhuj Mandir in terms of West facing temples. It is considered that this is some of the earlier made structure. It also has Nandi image in the plinth facing temple. Simplicity is another attraction of this temple which signify its initial stage of Chandel art. It has only a sanctum and portico or terrace.

Parvati Temple

It is a small temple near to Vishwanath temple with a 4.10 ft. height Gauri image. Originally, Temple appeared to had dedicated to Lord Vishnu.[10]

Brahma Temple

Interestingly, the temple houses a Chaturmukha(four faces) Linga, not the image of Brahma. It has figures of Vishnu as well. The temple is unique as; it has opening in back to entrance and windows in the north and south walls.

Vamana Temple

This temple constructed in the area of 63 x 45 feet dimensions in the nagara style. It has seven chariot sikhara under which a statue of Vaman (an incarnation of Vishnu) is placed. The statue is 4.5 feet high, a small size human like figure. The outer walls have two bands of decorative sculptures. The subject of depiction themed around the similar to other temples here. This is expected to build in between 1050-1075 CE.

Jabari Temple

Javeri is a small size (38 x26 ft dimension) temple dedicated to Cahturmukhi Vishnu. This temple has excellent architecture as, it adorns Makaratorana of 24 loops and finely engraved roofs of

[10] Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd, p 14

Mandapa and Ardhamandapa. As per standard outer walls have three strips of sculptural work shows the architectural climax of Chandel period.[11]

Parsvanath Temple

This is a Jaina Temple dedicated to 23rd Jain tirthankara Parshvanatha which was Originally Adinath temple (the first tirthankara). The temple has mixed features of Jainism and Vaishnavism. It has exterior richly carved with the figures of Vaishnav subjects. It is largest Jain temple in Khajuraho, has an entrance Antara lans sanctum. The outer walls have usual three strips of designs and motifs along with idols of Hindu god-goddess, and mythological stories. One particular image of women sitting crossed legs appears to engage in some exotic acts is shockingly only example here as against the overtly nude images in other temples. The temple has an inscription showing magic square of 16 small square. Each square has a different number ranging 1 to 16. The number aligned in the manner where, counting any four block numbers horizontally, vertically, diagonally gives sum to 34.

Dula Deva Temple

Duladeva also known as Kunwar math as it believed to build by some Prince of region.[12] This is a Shiva temple based on Nagara style. It has dimensions 69.2 x 40.3 feet, The outer three band are usually. The Mahamandapa is octagonal which is largest of other temples. It has soul soothing decoration. Vasala is seem to has chief sculpture of this temple.[13]

Jhatkari Shiva Temple

Jhatkari is a name of village near to Khajuraho. Here a Shiva temple unearthed, suggesting its origin in the Chandel period. The temple has a marble linga but much of the structure is damaged and about to extinct in form.

Ghantai Temple

The Ghantai temple was similar to Parsvanath Temple in its plan and design.[14] This is another Jain temple in Khajuraho which was dedicated to Jain Tirthankar Rishabh Nath or Adinath. It has lost its original configuration and structure. Currently, only has an entrance upon which a chain and bell is places from where it got name Ghantai. The entrance mandapa entirely made using carved pillars. Roof of this Mandapa engraved with jain's mythical stories. The figures of Yaksha,Yakshinis along with floral and geometric patterns engraved. The temple had a Mahamandapa and Garbhagriha as well which is non existential at the moment.

Importance of Kajuraho temples

After studying the temples of Khajuraho built in the 9th to 11th century, we learned about the historical perspective of religion, temple planning, sculpture and religious orientation of society at that time. The architectural excellencies of these temples showed the visionary patron and qualified artisans, who made such structures even standing tall in 21st century. The artificial decoration on walls is using sandstone and granite is another wonder of human skills. They gave proper, precise

[11] Ibid, p 124
[12] ASR, vol 11, pp 436-37
[13] Name inscribed on the temple at many spot
[14] Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd, p15

and living sense to statues and idols made or engraved all over the structure of temples. The pride of our past is on believing and imbibing such marvels. Doing so will guide us to protect and flourish the art and culture propounded by our ancestors.

Conclusion

Khajuraho, a place of historical importance seen its emergence politically and culturally in the 8th century afterward, when early Chandel rulers set this place as their capital city. They build wonderful structures here, most resonating in the form of temples where religious consonant and sectorial harmony imprinted. The city has mainly three compounds of temples ie. Western, South Eastern and southern. These temples belong to different sects and religions (Vaishnav, Shaivite, Shakt, Surya, Jaina etc). Temples built here are rich work of architecture, most of temples are in Nagara style and panchayatan design. These temples made on an uplifted platform known as Jagati, above which Adhisthana and other part constructed. These temples have rich work of decoration at gateways, mandapas, antaral and garbhagriha. The walls of most of the temples are intrinsically carved out and motifs of religious subjects, human, animal and mythology placed. Some exotic images can be seen in selective temples, which are subject to contention to many scholars, some criticize them while endorse.

Over the time nearly 2/3 temples turned relics due to human and natural factor. Some of them survived this ongoing destruction. Currently, Khajuraho temples are part of UNESCO's World Heritage Site since 1986. Additionally, ASI involved in maintaining the heritage of Khajuraho. These temples are gifted to humanity where spirituality surpassed the materialistic attractions.

Bibliography

- Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd,
- वर्मा, डॉ0 महेंद्र , चंदेल कालीन कला और संस्कृति , 1992, रमानंद विद्याभवन , नई दिल्ली
- Fergusson , James, A History of Indian and Eastern Architecture, vol ii ,
- वर्मा, डॉ0 महेंद्र , बुंदेलखंड की वास्तुकला , 2003, भारतीय कला प्रकाशन ,
- Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd,
- वर्मा, डॉ0 महेंद्र , बुंदेलखंड की वास्तुकला , 2003, भारतीय कला प्रकाशन , पेज 115 and Vidya Prakash,
- Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd,
- ASR, vol 11,
- Vidya, Prakash, Khajuraho, 1967, Taraporvala's sons & co. pvt. Ltd, p15

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

दिव्यांगता, समावेशन और सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय विमर्श

आशुतोष पाण्डेय
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
एवं
डॉ. अंजली द्विवेदी
एम.ए, एम. फिल, पी. एच–डी
समाजशास्त्र

सारांश
दिव्यांगता समकालीन समाज की एक महत्वपूर्ण सामाजिक, शैक्षिक तथा मानवाधिकार संबंधी चुनौती है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक दिव्यांग व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति, उनके प्रति दृष्टिकोण तथा उनके अधिकारों में निरंतर परिवर्तन देखने को मिलता है। वर्तमान युग में दिव्यांगता को केवल शारीरिक अथवा मानसिक अक्षमता के रूप में नहीं देखा जाता बल्कि इसे सामाजिक सहभागिता, समान अवसर तथा मानवाधिकारों से जुड़े व्यापक प्रश्न के रूप में समझा जाता है। इस शोध–पत्र में दिव्यांगता की अवधारणा उसके विभिन्न प्रकारों, दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों तथा भारत में उनकी सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि दिव्यांग व्यक्तियों के समावेशी विकास के लिए केवल कानूनी प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक जागरूकता, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा संस्थागत सहयोग भी आवश्यक है। शोध–पत्र में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के प्रमुख प्रावधानों तथा भारतीय समाज में दिव्यांग व्यक्तियों की वर्तमान स्थिति का भी विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि दिव्यांग व्यक्तियों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में व्यापक एवं प्रभावी प्रयासों की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : दिव्यांगता, सामाजिक समावेशन, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार,

प्रस्तावना

मानव समाज विविधताओं से परिपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक दृष्टि से एक–दूसरे से भिन्न होता है। समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो किसी शारीरिक, मानसिक अथवा संवेदी अक्षमता के कारण सामान्य जीवन क्रियाओं के निष्पादन में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को वर्तमान समय में 'दिव्यांग' के रूप में संबोधित किया जाता है। दिव्यांगता केवल व्यक्ति की जैविक

अथवा चिकित्सीय स्थिति नहीं है बल्कि यह समाज की संरचना, अवसरों की उपलब्धता तथा सामाजिक दृष्टिकोण से भी गहराई से जुड़ी हुई है।

इतिहास के विभिन्न कालखंडों में दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न रहा है। प्रारंभिक समाजों में दिव्यांगता को दुर्भाग्य, दैवीय दण्ड अथवा सामाजिक बोझ के रूप में देखा जाता था। परिणामस्वरूप दिव्यांग व्यक्तियों को सामाजिक उपेक्षा, भेदभाव तथा बहिष्करण का सामना करना पड़ता था किन्तु आधुनिक लोकतांत्रिक एवं मानवाधिकार आधारित समाज में दिव्यांगता को समानता, गरिमा तथा सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से समझा जाने लगा है। वैश्वीकरण, शिक्षा के प्रसार, मानवाधिकार आंदोलनों तथा कल्याणकारी नीतियों के विकास ने दिव्यांग व्यक्तियों की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य किया है। भारत में भी दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा तथा उनके समावेशी विकास के लिए अनेक संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान किए गए हैं। विशेष रूप से दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 ने दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों को व्यापक वैधानिक संरक्षण प्रदान किया है।

दिव्यांगता की अवधारणा एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

दिव्यांगता एक बहुआयामी सामाजिक अवधारणा है, जिसे विभिन्न विद्वानों, संस्थाओं तथा देशों द्वारा अलग–अलग दृष्टिकोणों से परिभाषित किया गया है। सामान्यतः दिव्यांगता उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें किसी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा संवेदी क्षमता इस प्रकार प्रभावित हो जाती है कि वह दैनिक जीवन की सामान्य गतिविधियों का निष्पादन करने में कठिनाई अनुभव करता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से दिव्यांगता केवल व्यक्ति की अक्षमता नहीं है, बल्कि यह समाज द्वारा निर्मित बाधाओं का परिणाम भी है। यदि समाज में उपयुक्त सुविधाएँ, संसाधन तथा अवसर उपलब्ध हों तो अनेक प्रकार की अक्षमताओं का प्रभाव काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसी कारण आधुनिक समाजशास्त्र में दिव्यांगता को सामाजिक बहिष्करण तथा सामाजिक समावेशन की अवधारणाओं से जोड़कर देखा जाता है।

दिव्यांगता को समझने के लिए मुख्यतः तीन प्रमुख दृष्टिकोणों का उल्लेख किया जाता है–

1. चिकित्सीय दृष्टिकोण (Medical Model) : इस दृष्टिकोण के अनुसार दिव्यांगता व्यक्ति के शरीर अथवा मन की किसी कमी अथवा विकार का परिणाम है। इसमें उपचार, पुनर्वास तथा चिकित्सीय हस्तक्षेप पर विशेष बल दिया जाता है।

2. सामाजिक दृष्टिकोण (Social Model) : सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार समस्या व्यक्ति में नहीं बल्कि समाज की संरचना में निहित होती है। सामाजिक बाधाएँ, भेदभाव, अनुपयुक्त अधोसंरचना तथा नकारात्मक दृष्टिकोण दिव्यांग व्यक्तियों की सहभागिता में अवरोध उत्पन्न करते हैं।

3. अधिकार आधारित दृष्टिकोण (Rights Based Approach) : यह दृष्टिकोण दिव्यांग व्यक्तियों को समान अधिकारों वाले नागरिक के रूप में स्वीकार करता है। इसके अंतर्गत समान अवसर, गरिमामयी जीवन, शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा को मूल अधिकार माना जाता है।

समकालीन समाज में दिव्यांगता की अवधारणा इन तीनों दृष्टिकोणों के समन्वय से विकसित हुई है, जिसमें व्यक्ति की आवश्यकताओं, सामाजिक सहभागिता तथा मानवाधिकारों को समान महत्व प्रदान किया जाता है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

- **दिव्यांगता अध्ययन (Disability Studies)** सामाजिक विज्ञानों के अंतर्गत विकसित होने वाला एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र है। प्रारम्भिक अध्ययनों में दिव्यांगता को मुख्यतः चिकित्सकीय समस्या के रूप में

देखा जाता था, किन्तु समय के साथ यह दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ और दिव्यांगता को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवाधिकार संबंधी मुद्दे के रूप में समझा जाने लगा।

- **ओलिवर (Oliver)** ने अपनी कृति **The Politics of Disablement** में दिव्यांगता के सामाजिक मॉडल को प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि दिव्यांगता का प्रमुख कारण व्यक्ति की शारीरिक अक्षमता नहीं, बल्कि समाज द्वारा निर्मित बाधाएँ एवं भेदभावपूर्ण संरचनाएँ हैं। उनके अनुसार सामाजिक संस्थाएँ, अधोसंरचना तथा नीतियाँ यदि समावेशी हों तो दिव्यांग व्यक्तियों की अनेक समस्याओं का समाधान संभव है।
- **बार्न्स एवं मर्सर (Barnes and Mercer)** ने दिव्यांगता को सामाजिक बहिष्करण से जोड़ते हुए यह प्रतिपादित किया कि दिव्यांग व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक सहभागिता के अवसरों से वंचित किए जाने के कारण वे समाज की मुख्यधारा से अलग हो जाते हैं। उनके अध्ययन में सामाजिक समावेशन को दिव्यांग सशक्तीकरण का आधार माना गया है।
- **शेक्सपियर (Shakespeare)** ने दिव्यांगता के अधिकार आधारित दृष्टिकोण को महत्व देते हुए कहा कि दिव्यांग व्यक्तियों को समान अधिकारों से युक्त नागरिक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके अनुसार दिव्यांगता का प्रश्न कल्याण अथवा दया का नहीं, बल्कि मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय का विषय है।
- भारतीय संदर्भ में विभिन्न शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि दिव्यांग व्यक्तियों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार संबंधी स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी, सामाजिक जागरूकता का अभाव तथा पुनर्वास सुविधाओं की सीमित उपलब्धता उनकी समस्याओं को और अधिक जटिल बनाती है।
- दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के लागू होने के पश्चात् अनेक अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि कानूनी स्तर पर दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों को व्यापक संरक्षण प्रदान किया गया है, किन्तु इसके प्रभावी क्रियान्वयन की दिशा में अभी भी अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दिव्यांगता पर अधिकांश शोध या तो चिकित्सकीय दृष्टिकोण अथवा अधिकार आधारित दृष्टिकोण पर केन्द्रित रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन दोनों के साथ–साथ समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य को भी सम्मिलित करते हुए दिव्यांगता की अवधारणा, प्रकार, अधिकार तथा भारतीय सामाजिक संदर्भ का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। अध्ययन में प्रयुक्त आँकड़े जनगणना रिपोर्टों, सरकारी दस्तावेजों, शोध–पत्रों एवं संदर्भ ग्रंथों से प्राप्त किए गए हैं। नवीनतम जनगणना आँकड़ों की अनुपलब्धता अध्ययन की एक प्रमुख सीमा है। इसके अतिरिक्त अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष्य तक सीमित है तथा इसमें प्राथमिक आँकड़ों का उपयोग नहीं किया गया है। भविष्य में क्षेत्रीय एवं तुलनात्मक अध्ययनों के माध्यम से इस विषय पर अधिक व्यापक शोध किया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य (Research Objectives)

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य दिव्यांगता की अवधारणा, स्वरूप, प्रकार एवं उससे संबंधित सामाजिक, शैक्षिक तथा कानूनी आयाम, दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के प्रमुख प्रावधान, दिव्यांग व्यक्तियों के समावेशी विकास हेतु आवश्यक उपायों एवं नीतिगत सुझावों का अध्ययन करना है।

शोध पद्धति एवं उपकरण (Research Methodology and Tools)

प्रस्तुत शोध–पत्र वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति का है। अध्ययन में दिव्यांगता से संबंधित विभिन्न सामाजिक, कानूनी एवं सांख्यिकीय तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

तथ्य संकलन के स्रोत

अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है जिसके अंतर्गत – भारत की जनगणना रिपोर्ट (2001 एवं 2011), दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ, शोध–पत्र एवं शोध–प्रबंध, सरकारी प्रतिवेदन, पत्र–पत्रिकाएँ, विश्वसनीय वेबसाइट एवं ऑनलाइन स्रोत।

दिव्यांगता के प्रकार एवं वर्गीकरण

दिव्यांगता एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसके अंतर्गत अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं संवेदी अक्षमताएँ सम्मिलित होती हैं। आधुनिक समय में दिव्यांगता को केवल चिकित्सकीय समस्या के रूप में न देखकर सामाजिक सहभागिता एवं अवसरों की उपलब्धता से जोड़कर देखा जाता है। भारत में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 ने दिव्यांगता की विभिन्न श्रेणियों को विधिक मान्यता प्रदान की है।

1. दृष्टि संबंधी दिव्यांगता : दृष्टि संबंधी दिव्यांगता उन व्यक्तियों को संदर्भित करती है जिनकी देखने की क्षमता पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से प्रभावित होती है। इसके अंतर्गत पूर्ण दृष्टिहीनता, कम दृष्टि (Low Vision) तथा अन्य दृष्टि संबंधी विकार सम्मिलित हैं। ऐसी स्थिति व्यक्ति की शैक्षिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक गतिविधियों को प्रभावित करती है।

2. श्रवण संबंधी दिव्यांगता : श्रवण दिव्यांगता से आशय सुनने की क्षमता में कमी अथवा पूर्ण हानि से है। ऐसे व्यक्तियों को संचार, शिक्षा तथा सामाजिक सहभागिता में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सांकेतिक भाषा तथा सहायक तकनीकें इनके जीवन को अधिक सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

3. वाक एवं भाषा संबंधी दिव्यांगता : इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जिन्हें बोलने, उच्चारण करने अथवा भाषा के प्रभावी प्रयोग में कठिनाई होती है। यह समस्या जन्मजात अथवा किसी दुर्घटना अथवा रोग के कारण भी उत्पन्न हो सकती है।

4. चलन अथवा गतिशीलता संबंधी दिव्यांगता : जब किसी व्यक्ति की शारीरिक गति, अंगों की कार्यक्षमता अथवा चलने–फिरने की क्षमता प्रभावित होती है, तब उसे चलन संबंधी दिव्यांगता कहा जाता है। यह जन्मजात, दुर्घटनाजन्य अथवा रोगजनित कारणों से उत्पन्न हो सकती है।

5. बौद्धिक दिव्यांगता : बौद्धिक दिव्यांगता व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, सीखने की योग्यता तथा समस्या समाधान क्षमता को प्रभावित करती है। इसके अंतर्गत बौद्धिक अक्षमता, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम विकार तथा विशिष्ट अधिगम अक्षमताएँ प्रमुख हैं।

6. मानसिक व्यवहार संबंधी दिव्यांगता : मानसिक रोगों से प्रभावित व्यक्तियों को अनेक सामाजिक, भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अवसाद, द्विध्रुवीय विकार, गंभीर मानसिक विकार आदि इस श्रेणी में सम्मिलित किए जाते हैं।

7. बहुदिव्यांगता : जब किसी व्यक्ति में एक से अधिक प्रकार की दिव्यांगताएँ एक साथ उपस्थित होती हैं, तब उसे बहुदिव्यांगता कहा जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को विशेष सहायता एवं बहुआयामी पुनर्वास सेवाओं की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि दिव्यांगता केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेदी आयामों को भी समाहित करती है। अतः दिव्यांग व्यक्तियों के समावेशी विकास के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।

भारत में दिव्यांगजनों की स्थिति : सांख्यिकीय विश्लेषण

दिव्यांगता केवल स्वास्थ्य अथवा व्यक्तिगत अक्षमता का विषय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक विकास, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा सामाजिक न्याय से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है। किसी भी देश में दिव्यांग व्यक्तियों की वास्तविक स्थिति का आंकलन उनकी जनसंख्या, शैक्षिक स्तर, रोजगार की उपलब्धता तथा सामाजिक सहभागिता के आधार पर किया जाता है। भारत में समय–समय पर की गई जनगणनाओं एवं सर्वेक्षणों से दिव्यांग व्यक्तियों की स्थिति का आंकलन किया जाता रहा है।

भारत की जनगणना के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि देश में दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या करोड़ों में है। यह संख्या समाज के एक ऐसे वर्ग को इंगित करती है जिसे विकास की मुख्यधारा में सम्मिलित करने हेतु विशेष प्रयासों की आवश्यकता है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार भारत में दृष्टि, श्रवण, वाणी, गतिशीलता तथा मानसिक दिव्यांगता प्रमुख रूप से पायी जाती हैं।

ग्रामीण एवं शहरी परिप्रेक्ष्य में दिव्यांगता

भारतीय जनगणना के आँकड़ों का अध्ययन करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। इसका प्रमुख कारण स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता, जागरूकता का अभाव, गरीबी, कुपोषण तथा पुनर्वास सुविधाओं की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों को शिक्षा एवं रोजगार के अवसर अपेक्षाकृत कम प्राप्त होते हैं, जिसके कारण उनका सामाजिक समावेशन प्रभावित होता है।

इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाएँ, विशेष विद्यालय, पुनर्वास केन्द्र तथा तकनीकी संसाधन अपेक्षाकृत अधिक उपलब्ध होते हैं। तथापि शहरी क्षेत्रों में भी दिव्यांग व्यक्तियों को सामाजिक पूर्वाग्रहों तथा रोजगार संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

लैंगिक परिप्रेक्ष्य में दिव्यांगता

भारत में पुरुष एवं महिला दिव्यांग व्यक्तियों की स्थिति में भी उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है। सामान्यतः पुरुष दिव्यांगों की संख्या महिलाओं की अपेक्षा अधिक दर्ज की गई है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि महिलाओं की स्थिति बेहतर है। अनेक बार सामाजिक कारणों, जागरूकता के अभाव तथा पंजीकरण संबंधी समस्याओं के कारण महिला दिव्यांगों की वास्तविक स्थिति आँकड़ों में पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित नहीं हो पाती। दिव्यांग महिलाओं को दोहरे भेदभाव का सामना करना पड़ता है। एक ओर वे दिव्यांगता से संबंधित चुनौतियों का सामना करती हैं, वहीं दूसरी ओर लैंगिक असमानता एवं सामाजिक रूढ़ियों का भी प्रभाव झेलती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्रों में उनकी स्थिति विशेष ध्यान की अपेक्षा करती है।

राज्यवार स्थिति का विश्लेषण

भारत के विभिन्न राज्यों में दिव्यांगता की स्थिति समान नहीं है। जनसंख्या के आकार, स्वास्थ्य सुविधाओं, सामाजिक जागरूकता तथा आर्थिक विकास के स्तर के आधार पर राज्यों में पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा राजस्थान जैसे बड़े राज्यों में दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत गोवा, मिजोरम, सिक्किम तथा कुछ पूर्वोत्तर राज्यों में दिव्यांग जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है। राज्यवार आँकड़ों से यह भी स्पष्ट होता है कि केवल जनसंख्या का आकार ही

दिव्यांगता की स्थिति को निर्धारित नहीं करता, बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता, शिक्षा की उपलब्धता तथा सामाजिक विकास का स्तर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सांख्यिकीय विश्लेषण

उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में दिव्यांग व्यक्तियों की संख्या समाज के एक महत्वपूर्ण वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि सरकार द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, फिर भी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में अभी व्यापक सुधार की आवश्यकता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, महिलाओं तथा बहुदिव्यांग व्यक्तियों पर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 : एक विश्लेषण : भारतीय संविधान समानता, स्वतंत्रता एवं गरिमा के सिद्धांतों पर आधारित है। संविधान के मूल उद्देश्यों को साकार करने हेतु दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विभिन्न कानूनी प्रावधान किए गए हैं। इसी दिशा में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध हुआ है। यह अधिनियम संयुक्त राष्ट्र के दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार संबंधी अभिसमय (UNCRPD) की भावना के अनुरूप निर्मित किया गया है। इसका उद्देश्य दिव्यांग व्यक्तियों को समान अवसर, सामाजिक न्याय तथा गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करना है।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ

1. दिव्यांगता की मान्य श्रेणियों का विस्तार।
2. समान अवसर एवं भेदभाव रहित व्यवहार का अधिकार।
3. समावेशी शिक्षा की व्यवस्था।
4. रोजगार में आरक्षण एवं संरक्षण।
5. सार्वजनिक भवनों एवं सेवाओं को सुगम बनाना।
6. स्वास्थ्य एवं पुनर्वास सुविधाओं का विस्तार।
7. दिव्यांग महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों की विशेष सुरक्षा।
8. सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी योजनाओं का प्रावधान।

शिक्षा एवं रोजगार के संदर्भ में अधिनियम की भूमिका

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 ने शिक्षा को दिव्यांग व्यक्तियों का मूल अधिकार माना है। अधिनियम के अंतर्गत समावेशी शिक्षा की अवधारणा को बढ़ावा दिया गया है, जिससे दिव्यांग छात्र सामान्य विद्यार्थियों के साथ अध्ययन कर सकें। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा एवं सरकारी सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है। रोजगार के क्षेत्र में यह अधिनियम दिव्यांग व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इससे उनके आर्थिक सशक्तीकरण एवं आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिलता है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण एवं विमर्श

दिव्यांगता को समझने के लिए केवल चिकित्सकीय दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि अनेक बार समाज की संरचना, सामाजिक पूर्वाग्रह तथा अवसरों की असमानता स्वयं दिव्यांगता को और अधिक जटिल बना देती है।

संरचनात्मक क्रियात्मकतावादी दृष्टिकोण : इस दृष्टिकोण के अनुसार समाज विभिन्न संस्थाओं से मिलकर बना एक संगठित तंत्र है। यदि किसी व्यक्ति की कार्यक्षमता प्रभावित होती है तो सामाजिक संस्थाओं का दायित्व है कि वे उसे आवश्यक सहायता एवं संसाधन उपलब्ध कराएँ, जिससे सामाजिक संतुलन बना रहे।

संघर्षवादी दृष्टिकोण : संघर्षवादी विचारधारा के अनुसार समाज में संसाधनों एवं अवसरों का वितरण समान नहीं होता। दिव्यांग व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के क्षेत्र में अनेक असमानताओं का सामना करना पड़ता है। अतः सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए विशेष नीतियों एवं आरक्षण की आवश्यकता होती है।

अधिकार आधारित दृष्टिकोण : आधुनिक समाज में दिव्यांगता को मानवाधिकारों से जोड़कर देखा जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार दिव्यांग व्यक्ति समाज के समान अधिकार प्राप्त नागरिक हैं तथा उन्हें गरिमापूर्ण जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।

सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशन : सामाजिक बहिष्करण वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति समाज की मुख्यधारा से अलग हो जाता है। दिव्यांग व्यक्तियों को प्रायः शिक्षा, रोजगार, परिवहन तथा सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। समावेशन का उद्देश्य इन बाधाओं को समाप्त करके सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करना है।

निष्कर्ष

दिव्यांगता समकालीन समाज की एक महत्वपूर्ण सामाजिक, शैक्षिक एवं मानवाधिकार संबंधी चुनौती है। यह केवल किसी व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक स्थिति का प्रश्न नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना, अवसरों की उपलब्धता तथा समाज के दृष्टिकोण से भी गहराई से जुड़ी हुई है। प्रस्तुत अध्ययन में दिव्यांगता की अवधारणा, प्रकार, अधिकार एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दिव्यांग व्यक्तियों को आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार एवं सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यद्यपि भारत सरकार द्वारा दिव्यांग व्यक्तियों के कल्याण एवं सशक्तीकरण हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं तथा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के माध्यम से उनके अधिकारों को वैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है, फिर भी व्यावहारिक स्तर पर अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं।

विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि दिव्यांगता को केवल चिकित्सकीय दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। सामाजिक दृष्टिकोण, अधिकार आधारित दृष्टिकोण तथा समावेशन की अवधारणा वर्तमान समय की आवश्यकता है। जब तक समाज में सकारात्मक दृष्टिकोण, सुगम अधोसंरचना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं समान अवसर उपलब्ध नहीं होंगे, तब तक दिव्यांग व्यक्तियों का वास्तविक सशक्तीकरण संभव नहीं होगा।

अतः यह आवश्यक है कि दिव्यांग व्यक्तियों को समाज के एक आश्रित वर्ग के रूप में न देखकर विकास प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार किया जाए। समावेशी समाज की स्थापना तभी संभव होगी जब प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुरूप अवसर एवं सम्मान प्राप्त हो।

सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं–

1. दिव्यांगता के प्रति समाज में व्याप्त नकारात्मक धारणाओं एवं पूर्वाग्रहों को समाप्त करने हेतु व्यापक जनजागरूकता कार्यक्रम संचालित किये जायें।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों के लिए स्वास्थ्य, पुनर्वास एवं परामर्श सेवाओं का विस्तार किया जाए।
3. समावेशी शिक्षा व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाया जाए तथा विद्यालयों एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
4. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए कौशल विकास एवं स्वरोजगार कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए।
5. सार्वजनिक भवनों, परिवहन सेवाओं एवं डिजिटल प्लेटफार्मों को पूर्णतः सुगम (Accessible) बनाया जाए।

6. दिव्यांग महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए विशेष सुरक्षा एवं सशक्तीकरण कार्यक्रम संचालित किये जायें।
7. सरकारी एवं निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जाए तथा आरक्षण संबंधी प्रावधानों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए।
8. दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित योजनाओं की नियमित निगरानी एवं मूल्यांकन की व्यवस्था विकसित की जाए।
9. दिव्यांगता विषयक शोध एवं नवाचार को प्रोत्साहित किया जाए, जिससे नीति निर्माण की प्रक्रिया अधिक प्रभावी बन सके।
10. समाज में समावेशन एवं समान अवसर की संस्कृति को विकसित करने के लिए सरकारी शैक्षणिक संस्थानों, गैर–सरकारी संगठनों एवं समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित की जाये।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार,(2016), दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, नई दिल्ली : भारत सरकार।
2. भारत सरकार, (2011), भारत की जनगणना, 2011, नई दिल्ली : भारत के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त।
3. भारत सरकार, (2001), भारत की जनगणना, 2001, नई दिल्ली : भारत के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ, Convention on the Rights of Persons with Disabilities (UNCRPD).
5. सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, विभिन्न वार्षिक प्रतिवेदन।
6. Oliver, M, The Politics of Disablement.
7. Barnes, C. & Mercer, G. Disability Studies and Society.
8. Shakespeare, T. Disability Rights and Wrongs.
9. Singh, Surendra. Samajik Nyaya Evam Divyangjan Adhikar.

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

स्वस्थ भारत के निर्माण में पारंपरिक खाद्य पदार्थों की भूमिकाः मोटे अनाज के विशेष संदर्भ में

अरविन्द कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ
एवं असि० प्रो०राजनीति विज्ञान विभाग,आर० एम० पी०(पी०जी०)कॉलेज, सीतापुर

सार (Abstract)

किसी भी स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए उनके निवासियों की प्राथमिकता पोषण युक्त खाद्य पदार्थों के उपयोग, उत्पादन एवं उनकी खाद्य सुरक्षा उनका आधार स्तंभ होती है। भारतीय समाज प्राचीन काल से ही खान–पान, रहन–सहन एवं स्वास्थ्य के प्रति सजग रहा है। यहां मुख्य रूप से पोषण युक्त खाद्य पदार्थों को विशेष महत्व दिया गया है, जिसमें कंदमूल फलों से लेकर दालें सब्जियां व अनाजों को भौगोलिक क्षेत्र तथा मौसमी जलवायु चक्र के अनुसार उनके उत्पादन एवं उपभोग पर विशेष बल दिया गया है। भारत के पारंपरिक खाद्य पदार्थों में विशेष रूप से मोटे अनाजों की स्वस्थ जीवन के निर्वाह में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन भारतीय बौद्धिक परंपरा में मोटे अनाज समाज के सबसे कमजोर वर्गों की दिनचर्या के प्रमुख भोज्य पदार्थ रहे हैं। लेकिन वर्तमान में स्वस्थ भारत एवं आत्मनिर्भर भारत जैसे विचार एवं भारत सरकार की इन विचारों से संबंधित विभिन्न योजनाएं एवं अनेक रिपोर्टों में कुपोषण एवं स्वास्थ्य के प्रति जो आंकड़े एवं आशंकाएं बताई जा रही है, वह बहुत ही गंभीर एवं चुनौतीपूर्ण हैं। ये आंकड़े एवं आशंकाएं यह बताती हैं, कि कहीं ना कहीं भारतीय नागरिकों के खान–पान एवं रहन–सहन में भारत की प्राचीन बौद्धिक परंपरा के प्रति विमुक्ति के कारण हुई है।क्योंकि भारतीय बौद्धिक परंपरा में मोटे अनाज सहस्त्राब्दियों से भारत के लोगों के फसल चक्र, मौसमी उत्सव उनकी प्राकृतिक घनिष्ठता से जुड़े रहे हैं। जो प्रमुखतः भारतीय नागरिकों के रहन–सहन, खान–पान एवं स्वास्थ्य के अभिन्न अंग रहे हैं। इसीलिए पुनः भारत सरकार ने मोटे अनाजों के प्रति लोगों में जागरूकता एवं उनके स्वास्थ्य की संवेदनशीलता को नीतिगत जन चेतना के रूप में आगे बढ़ा रही है। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य स्वस्थ भारत के निर्माण में पारंपरिक खाद्य पदार्थों की भूमिका को रेखांकित करना है तथा मोटे अनाजों की स्वास्थ्य के प्रति उनकी संवेदनशीलता को बढ़ावा देना है

मुख्य शब्द– स्वस्थ भारत, मोटे अनाज, पारंपरिक खाद्य पदार्थ, पोषण, खाद्य सुरक्षा।

प्रस्तावना

मोटे अनाज मानव समुदाय को ज्ञात सबसे प्राचीन खाद्य पदार्थ हैं। इन(श्रीअन्न) अनाजों में मुख्य रूप से ज्वार,बाजरा, रागी/मड़वा आदि शामिल हैं। "एक अनुमान के आधार पर यह माना जाता है ,कि इनकी खेती लगभग 8000 ई०पू० से की जाती रही है।" भारतीय बौद्धिक श्रमण परंपरा में यह खाद्य पदार्थ सबसे ग्राह्य इसलिए थे,क्योंकि यह भरपूर पोषक तत्वों से युक्त उत्पादन की न्यूनतम आवश्यकताओं और जलवायु प्रतिरोधक क्षमता के कारण ही भारतीयों द्वारा शताब्दियों से उगाए जाते रहे हैं। मोटे अनाज अपनी समृद्ध

पोषक तत्वों और सूखा प्रतिरोधी गुणवत्ता के लिए जाने जाते हैं। यह अनाज भारत के आम लोगों के फसल चक्र के मौसमी उत्सवों के माध्यम से प्राकृतिक संवेदनशीलता और उनसे घनिष्ठ रूप से जुड़े रहने का कारण इनका पर्यावरण के अनुकूल एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता से युक्त होना रहा है। भारत में व्यापक रूप से खाए जाने वाले मोटे अनाज घरेलू खाद्य सुरक्षा और आहार विविधता में प्रमुख भूमिका निभाते थे। लेकिन इनकी लोकप्रियता और उनके व्यवसायीकरण में सबसे बड़ी बाधा, अन्य अनाजों की अपेक्षा इनकी ब्रांडिंग समाज में सबसे असहाय एवं गरीब लोगों के भोजन के रूप में की गई। वाणिज्यिक खाद्य प्रणाली में उनके अनुसंधान एवं विकास तथा निवेश के संबंध में उन्हें प्राय उपेक्षित रखा गया,जबकि पर्यावरण के नकारात्मक परिवर्तनों में मोटे अनाजों की भूमिका अप्रभावी रही हैं। "भारत की हरित क्रांति 1960 के दशक में भी इनको प्रमुखता नहीं मिली। परिणामतः मोटे अनाज आम जनमानस की आहार श्रृंखला से धीरे–धीरे बाहर होते चले गए।" भारत में इस पोषण परिवर्तन ने पहले से चले आ रहे, पारंपरिक भोजन और व्यंजनयुक्त साबुत अनाज से स्वास्थ्य वर्धक पोषक तत्व प्राप्त होते थे। उसमें मुख्यतः मोटे अनाज और अन्य प्राचीन अनाज, भारतीयों के विविधतापूर्ण आहार में शामिल थे, जो पिछले कुछ सहस्त्राब्दियों से भारतीय उपमहाद्वीप में प्रमुख रूप से उगाए जाते थे। वर्तमान में स्वस्थ भारत के निर्माण में कुपोषण की समस्या प्रमुख चुनौती बनी हुई है,जिसके कारण अधिकतर लोगों में यह विभिन्न बीमारियों के रूप में सामने आती है, जिसका प्रमुख कारण अल्प भोजन एवं कुपोषण युक्त खाद्य पदार्थों का भारतीयों के आहार के प्रमुख हिस्से के रूप में शामिल होना रहा है।

मोटे अनाजों के सेवन से संबंधित आम लोगों की नकारात्मक सोच और सरकार के नीतिगत निर्णय तथा वाणिज्यिक एवं आर्थिक युग की ललक ने भारतीय आम जनमानस की दिनचर्या में धीरे–धीरे मोटे अनाजों का सेवन काम होता चला गया। जिसका परिणाम यह हुआ, कि लोग कुपोषण का शिकार होते चले गए और इस कुपोषण की समस्या ने लोगों के स्वास्थ्य एवं खाद्य सुरक्षा दोनों समस्याओं को जन्म दिया,जिससे लोग भुखमरी, गरीबी तथा विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त होते चले गए। "वैश्विक भूख सूचकांक–2024 में भारत का स्थान 127 देश में से भारत 105 वें स्थान पर है। जिसका(GHI) स्कोर 27.3 था, जो भुखमरी और कुपोषण की गंभीर स्थिति को दर्शाता है।" जबकि संविधान लागू होने के बाद से ही भारत सरकार और राज्य सरकारों की तरफ से भुखमरी और कुपोषण को समाप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की नीतियां और कार्यक्रम लगातार चलाए जा रहे हैं। इसके बावजूद वर्तमान परिदृश्य में लोगों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एवं स्वास्थ्य वर्धक आहार प्राप्त करना स्वस्थ राष्ट्र–निर्माण के समक्ष गंभीर चुनौती बनी हुई है। क्योंकि राष्ट्रीय खाद सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत देश की लगभग 80 करोड़ आबादी अपनी खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्षम रही है अर्थात 80 करोड़ लोगों को अपनी आहार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा रहा है। जबकि "संविधान का अनुच्छेद 21, भारत के सभी नागरिकों को खाद्य के अधिकार सहित जीवन के अधिकार का उपबंध सुनिश्चित करता है" वही संविधान के निर्देशक तत्वों का अनुच्छेद 47 यह उपबंध करता है, कि "राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को प्राप्त करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार में अपने प्राथमिक कर्तव्यों को मानेगा" तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं और भारतीय संवैधानिक बाध्यताओं के तहत भारत के लोगों को अपने गरिमापूर्ण जीवन जीने के अवसरों को प्राप्त करने के लिए विवश किया, तब जाकर कहीं,केंद्र एवं राज्य सरकारों ने अपने दायित्व को पूरा करने के उद्देश्य से खाद सुरक्षा को उपलब्ध कराना राष्ट्रीय नियोजन का केंद्र बिंदु बनाया। इसी के अनुपालन में "खाद सुरक्षा अधिनियम 2013 को अधिनियमित किया गया, जो लोगों को उनके स्वास्थ्य जीवन के लिए गारंटी प्रदान करता है।जिसमें गेहूं चावल के साथ–साथ ही मोटे अनाजों को अन्य लोगों के जीवन की दिनचर्या में प्रमुखता दी गई है तथा इसकी आपूर्ति के लिए खाद्य एवं

उपभोक्ता एवं कृषि मंत्रालय को इनकी उपलब्धता को बढ़ाने को मुख्यतः निर्देशित करता है।" इसी के अनुपालन में भारत के राजपत्र 13 अप्रैल 2018 के अनुसार यह स्वीकार किया गया है,कि "मिलेट में देश की पोषण संबंधी सुरक्षा में योगदान देने की बहुत अधिक सामर्थ्य है।" अर्थात मोटे अनाज न केवल पोषक तत्वों के प्रचुर भंडार ही है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील एवं लचीलेपान वाली फसलों से संबंधित भी हैं।

शोध अनुसंधान पद्धति–

यह शोधपत्र मूल रूप से पारंपरिक खाद्य पदार्थ एवं मोटे अनाजों के प्रयोग पर आधारित स्वस्थ भारत के निर्माण के विचारों पर आधारित है, जिसमें मुख्य रूप से द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है, जो विभिन्न प्रकार के शोध पत्र, जर्नल, पुस्तकें, सरकारी वेबसाइट एवं समाचार पत्रों से संग्रहित किए गए हैं।

शोध अध्ययन के उद्देश्य–

1. स्वस्थ भारत के निर्माण में मोटे अनाजों की भूमिका का अध्ययन करना
2. मोटे अनाज अपने समृद्ध पोषक तत्वों एवं गुणवत्ता के रूप में समकालिक भारत में इनकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
3. स्वस्थ भारत के निर्माण में मोटे अनाज प्राकृतिक रूप से कम हानिकारक एवं पर्यावरण के प्रति उनकी संवेदनशीलता पर प्रकाश डालना।

भारत में पारंपरिक खाद्य पदार्थ एवं मोटे अनाजों का महत्व

भारत की प्राचीन प्राकृतिक ज्ञान परंपरा में मोटे अनाज स्वस्थ जीवन के आधार स्तंभ थे। यह अनाज स्वास्थ्य वर्धक पोषण तत्वों से भरपूर होते हैं, जिन्हें पोषक तत्वों का 'पावर हाउस' भी कहा जाता है। जिनका उत्पादन और उपभोग प्राचीन बौद्धिक ज्ञान परंपरा पर आधारित था, जो पर्यावरणीय फसल चक्र की कृषि संस्कृति पर आधारित थे। व्यक्ति के स्वास्थ्य जीवन जीने के लिए विविधता पूर्ण भोज्य पदार्थों की प्राथमिक आवश्यकता होती है, जो भारतीय जीवन शैली की ज्ञान परंपरा में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। भारतीय बौद्धिक ज्ञान परंपरा में स्वस्थ जीवन प्राकृतिक आचरण एवं खाद्य संस्कृति के अभिन्न अंग थे। भारतीय श्रमण ज्ञान परंपरा पर आधारित भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मोटे अनाजों से विभिन्न खाद एवं पेय पदार्थों को बनाया जाता था। जिनकी स्थानीय खाद्य संस्कृति में मुख्यतः स्वस्थ पौष्टिक भोजन के रूप में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। मोटे अनाज व्यक्ति की स्वास्थ्य समस्याओं में उपचारात्मक भूमिका निभाते हैं। क्योंकि इनके सेवन से व्यक्ति विभिन्न बीमारियों से लड़ने की क्षमताओं से युक्त हो जाता है, जिससे लोगों की जीवन प्रत्याशा अधिक हो जाती है। इसीलिए प्राचीन भारत में लोग अपना जीवन लंबे समय तक जीते थे। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में मोटे अनाज प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयोग किए जाते थे। मोटे अनाज भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से अभिन्न रूप में जुड़े थे।

मोटे अनाज में मौजूद पोषक तत्व

अनाज	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	फाइबर	कैल्शियम	फास्फोरस
	मिग्रा०	मिग्रा०	मिग्रा०	मिग्रा०	मिग्रा०	मिग्रा०
ज्वार।	10.4	72.6	1.9	1.6	25	222
बाजार।	11.6	67.5	50.0	1.2	42	296
राजी/मडुआ	7.3	72.0	1.3	3.6	344	283
झंगोरो	11.6	74.3	5.8	14.7	14	121

चीता।	12.5	70.4	1.1	2.2	14	206
कौमी / कंगनी	12.5	60.9	4.3	8.0	31	290

स्रोत–राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद

स्वस्थ भारत के निर्माण के लिए भारत के सभी नागरिकों के स्वस्थ शरीर के विकास एवं कुपोषण और खाद्य सुरक्षा जैसी समस्याओं का उपचार नितांत आवश्यक है। स्वस्थ शरीर के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा मोटे अनाजों में सबसे अधिक पाई जाती है जैसा की उपर्युक्त दी गई सारणी से स्पष्ट होता है, कि मोटे अनाजों में व्यक्ति के शारीरिक विकास के सभी आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा सबसे अधिक पाई जाती है। मोटे अनाजों के सेवन से विशेष कर महिलाओं और किशोरियों तथा बालकों में व्याप्त (विभिन्न रिपोर्ट के अनुसार) कुपोषण और एनीमिया की समस्या का निदान किया जा सकता है, क्योंकि स्वस्थ महिलाएं ही स्वस्थ बच्चों को जन्म दे सकती हैं और यही स्वस्थ बच्चे स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण की भूमिका की आधारशिला होंगे।

आधुनिक जीवन शैली एवं खानपान का मानव के स्वास्थ्य पर प्रभाव

आधुनिक भारतीय समाज में तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के प्रभाव से बदलती जीवन शैली से खान–पान और रहन–सहन में काफी परिवर्तन आया है। समकालीन आहार संबंधी बदलाव सुविधा और विविधता तो प्रदान करते हैं, लेकिन विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म भी दिया हैं। उपभोक्तावादी जीवन शैली से दुनिया भर में जलवायु संकट के ऐसे प्रभाव देखने को मिल रहे हैं, जो खाद्यान्न सुरक्षा के साथ–साथ पर्यावरणीय एवं मानव स्वास्थ्य के लिए चिंता जनक है, क्योंकि खाद्यान्न उत्पादन, वितरण एवं उपभोग की व्यवस्थाएं एक दूसरे से अंतर्संबंधित हैं।

आधुनिक जीवन शैली

आधुनिक जीवन शैली में भारतीय सामाजिक संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, वर्तमान युग की सूचना, संचार और तकनीकी क्रांति जैसे– स्मार्टफोन, डेस्कटॉप, इंटरनेट एवं सोशल मीडिया ने जीवन जीने की कला को सरल और सुविधा जनक तो बनाया है लेकिन इसके कारण शारीरिक श्रम एवं शारीरिक गतिविधियों की मात्रा में काफी कमी आयी है, और स्क्रीनटाइम बढ़ गया है। जिसके कारण देर रात तक जागना नींद की कमी ने अनियमित दिनचर्या को जन्म दिया है। तनाव पूर्ण जीवन आधुनिक जीवन शैली की सामान्य प्रवृत्ति बन गयी है। आज के दौर में प्रतिस्पर्धात्मक कार्यों का वातावरण, बेरोजगारी का तनाव और भाग–दौड़ की जीवन शैली में मानसिक तनाव को बढ़ा दिया है। जिसने लोगों के मानसिक स्वास्थ पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

वर्तमान जीवन शैली में पारम्परिक रूप से संतुलित आहार जैसे मोटा आनाज, दालें, चावल, रोटी और मौसमी सब्जियों की जगह फास्टफूड, जंगफूड और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों को बढ़ावा दिया है। जिसमें–पीज्जा, बर्गर, स्नैक्स, इनटेन्ट नूडल्स, शीतलपेय पदार्थ आदि विशेषकर शहरी और युवावर्ग में लोकप्रिय हो गये हैं। इन खाद्य पदार्थों में नमक, चीनी की अधिक मात्रा संतृप्त वसा और कृत्रिम योजक पाये जाते हैं। जो स्वास्थ को गम्भीर रूप से नुकसान पहुँचाते हैं। इण्डियन कांउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के अनुसार ''भारत में लोगों के आहार में वसा, चीनी और नमक की मात्रा बढ़ रही है। जबकि फाइबर और अन्य आवश्यक तत्वों का सेवन कम हो रहा है।'' इस आधुनिक खानपान और रहन–सहन में लोगों में कुपोषण और एनीमिया जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। जिसने उनके स्वास्थ को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। फूड एण्ड

एग्रीकल्चर ऑग्रनाइजेशन ने यह बताया कि ''लोगों के आहार में बढ़ती प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की हिस्सेदारी कुपोषण के नये रूप 'छिपा कुपोषण' को जन्म दे रही है।'' इन आधुनिक जीवन शैली में लाइलाज बीमारियों को बढ़ावा दिया है। जिससे– मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप और हृदयरोग की घटनायें बढ़ रही है। इण्यिन काउसिंल ऑफ मेडिकल रिसर्च के अनुसार–भारत में मधुमेह और उच्च रक्तचाप के मामलों में लगातार वृद्धि हो रही है। जिसका प्रमुख कारण अस्वस्थ जीवनशैली है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन में मानव के स्वास्थ को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।

मोटे अनाजों की पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता

भारत अपनी पारंपरिक बौद्धिक ज्ञान पद्धति का प्रयोग करके जिसमें विशेष कर मोटे अनाजों एवं कंदमूल फलों एवं मसाले का उत्पादन अपनी स्वदेशी ज्ञान की पद्धतियों से पारंपरिक खाद्य पदार्थों का उत्पादन करके पर्यावरणीय समस्याओं में जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर समस्या है,जो कार्बन उत्सर्जन का लगभग एक तिहाई कृषि जगत से खाद्य पदार्थों के उत्पादन से उत्सर्जित होता है। भारत अपनी स्वदेशी ज्ञान परंपरा से मोटे अनाजों का बड़े पैमाने पर उत्पादन को बढ़ावा देकर कार्बन उत्सर्जन को न्यूनतम स्तर पर ला सकता है तथा साथ ही साथ खाद्य सुरक्षा एवं पोषण युक्त खाद्यान्न उपलब्ध कराकर भारतीय नागरिकों के लिए उपचारात्मक अवसर प्रदान कर सकता है। मोटे अनाजों में भारत की आबादी के स्वस्थ एवं पौष्टिक आहार की व्यवहारिक समस्याओं की सकारात्मक क्षमता मौजूद है, क्योंकि वह बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों का सामना करने के अलावा स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी औषधि गुण वाले कार्यात्मक खाद्य पदार्थ जिसमें ट्यूमर, सूजन और हृदय रोगों जैसी बीमारियों से लड़ने की क्षमता इनमें मौजूद है। बनर्जी और मैत्रा (2020) "छोटा बाजरा पर अधिक जोड़ देते हैं, क्योंकि ये आहार फाइबर, कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन इत्यादि के समृद्ध स्रोत हैं।" भारत अपने मोटे अनाजों के स्वदेशी ज्ञान की पहचान के साथ–साथ विश्व में उसे एक मिसाल पेश करने का अवसर देता है, कि वह अपने स्वदेशी ज्ञान से खाद्य अनुवांशिक व्यवस्था के संरक्षण में योगदान दे सकता है,जो कि खाद्य सुरक्षा एवं पोषण के लिए अति आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन से खाद्य उत्पादन पर अधिक असर पड़ेगा। इस समस्या के समाधान के लिए सरकारों को मोटे अनाज के उत्पादन से संबंधित नीतिगत निर्णयों को अपनाना होगा, क्योंकि यह बड़े पैमाने पर क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन एवं खाद्य सुरक्षा तथा स्वास्थ्य को बड़े पैमाने पर नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहे हैं, जिन्हें सरकारें अपनी सार्वजनिक नीतियों से आम जनमानस की जागरूकता से रोकने में सक्षम हो सकती हैं। भारत अपनी बौद्धिक ज्ञान परंपरा की स्वदेशी पद्धतियों का प्रयोग करके जलवायु और गैर–जलवायु तनाव खाद्य सुरक्षा के जिन चार स्तंभों उपलब्धता, पहुंच, उपयोग और स्थिरता को प्रभावित करती है, भारत स्वदेशी ज्ञान पद्धतियों से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं।

स्वस्थ भारत के निर्माण में मोटे अनाजों की भूमिका

20वीं और 21वीं शताब्दी में दुनिया भर में लोगों के रहन–सहन एवं खान–पान में विशेष रूप से परिवर्तन हुए हैं,भारत भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा है। यह परिवर्तन भोजन और खान–पान के वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण के परिणाम स्वरुप हुआ हैं। वर्तमान आर्थिक युग मुख्यतः ब्रांडिंग का युग है, जहां लोग खाद्यान्न से संबंधित वस्तुएं हो या जीवन की अन्य उपयोग से संबंधित वस्तुएं आम जनमानस में उनकी अच्छाई उनकी कीमत ब्रांडिंग से तय होती है। चाहे उनमें पौष्टिकता हो या ना हो, मुख्यतः गेहूं और चावल जैसे अनाजों की ब्रांडिंग बहुत अधिक हुई है। 21 वीं शताब्दी में गेहूं और चावल को मुख्य भोजन की भूमिका में शामिल किया गया है, तब से इनके उत्पादन में काफी वृद्धि हुयी है। आर्थिक युग की दौड़ और खानपान में पौष्टिकता की चीजों को शामिल न करने से आम जनमानस धीरे–धीरे कुपोषण एवं भुखमरी जैसी

समस्याओं को बढ़ाया जिससे,विभिन्न बीमारियां एनीमिया, मोटापा, रक्तचाप, ब्लड प्रेशर जैसी गंभीर समस्याओं से घिर गया और आम जनमानस तो खाद्य असुरक्षा के दायरे में आ गए। भारत विभिन्न मानव सूचकांकों में पीछे के पायदानों में खड़ा दिखाई पड़ता है इसका कारण यह है कि भारत मानव सूचकांकों के जो संकेतक हैं; उनको पूरा करने में विफल रहा है, जबकि खाद्यान्न में आत्मनिर्भर है? अर्थात जो खाद्यान्न है, वह लोगों की पहुंच से बाहर है, और जो प्राप्त होता है,वह पर्याप्त पोषण और गुणवत्ता से युक्त नहीं है। इन्हीं समस्याओं के निराकरण के क्रम में खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के निर्देशानुसार भारत के राजपत्र 2018 में सरकार द्वारा यह बताया गया, कि मोटे अनाज न केवल पोषक तत्वों के भंडार है, बल्कि जलवायु के प्रति संवेदनशीलता वाली फसलें भी हैं। इसीलिए भारत सरकार ने लोगों को परंपरागत खेती को ओर आकर्षित करने के लिए अनेक नीतिगत निर्णयों के साथ–साथ बजट में पर्याप्त धनराशि आवंटित की गई है। इतना ही नहीं मोटे अनाजों की खेती के उत्पादकों का राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय बाजारों में व्यापार बढ़ाने के लिए भी अथक प्रयास किये जा रहे हैं। "जलवायु परिवर्तन और बढ़ती जनसंख्या के लिए स्वास्थ्यवर्धक पोषक तत्वों से युक्त खाद्य पदार्थों की चिंता के कारण भारत के अनुरोध पर संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2023 को मोटे अनाजों का वर्ष या 'मिलेट ईयर' घोषित किया गया है।" यह खाद्य सुरक्षा बढ़ाने और कुपोषण से निपटने के लिए बाजार आधारित खेती और खपत को बढ़ावा देता है। "इंडियन इंस्टीट्यूट आंफ मिलेट रिसर्च,हैदराबाद के अनुमान में यह बताया गया है कि भारत एशिया का 80 प्रतिशत एवं विश्व का 20प्रतिशत मोटे अनाजों का उत्पादन करता है।" यह भारत में मोटे अनाजों के प्रति सरकार द्वारा किए गए नीतिगत निर्णयों और कृषि उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की बढ़ती जागरूकता का नतीजा है।

तलिकाः अन्य अनाजों की तुलना में मोटे अनाजों के पोषक मूल्य

अनाज (प्रति100ग्रा)	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	अपरिष्कृत	खनिज तत्व।	कैल्शियम	फास्फोरस	आयरन
ज्वार	10.4	72.6	1.9	1.6	1.6	25	222	5.4
बाजार	11.6	67.5	5.0	1.2	2.3	42	296	11.0
रागी	7.3	72.0	1.3	3.6	2.7	344	283	3.9
चीना	12.5	70.4	1.1	2.2	1.9	14	204	2.9
(प्रोसो श्रीअन्न) कंगनी	12.3	60.9	4.3	8.0	3.3	31	290	2.8
कोदो	8.3	65.9	1.4	9.0	2.6	27	188	1.7
कुटकी	8.7	75.7	5.3	8.6	1.7	17	220	9.3
सांवा	11.6	74.3	5.8	14.7	4.7	14	121	
मक्का	11.5	66.2	3.6	2.7	1.5	20	348	2.7
गेहूं	11.8	71.2	1.5	1.2	1.5	41	306	3.5
चावल	6.8	78.2	0.5	0.2	0.6	10	160	3.5

स्रोतः भारतीय विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार (2023), 'मिलेट्स द फ्यूचर फूड', विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार.

भारत अपनी बौद्धिक विरासत की पारंपरिक खाद्य पदार्थों की ओर पुनः सकारात्मक रूप से आगे बढ़ रहा है। वर्तमान में मोटे अनाज अब स्थाई और स्वास्थ्य खाद्य आंदोलन के रूप में लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं और इसे अब 'स्मार्ट खाद्य पदार्थ' के रूप में मान्यता मिल रही है। विशेष रूप में भारतीय पारंपरिक खानपान सकारात्मक स्वास्थ्य परिणामों और स्थिरता से संबंधित रहा है। जिसमें मुख्य रूप से मोटे अनाजों की विशेष भूमिका रही है, जिसमें ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, कुट्टू,रामदाना, कंगनी, कुटकी, चीना और सामा प्रमुख रूप से शामिल रहे हैं। जिनका बड़े पैमाने पर उत्पादन जलवायु चक्र की संरचना के अनुरूप किया जाता था। पर्यावरण के अनुकूल तथा विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर होते थे, जिनका सेवन लोगों के लिए स्वास्थ्यवर्धक थे। यह खाद्य पदार्थ लोगों की प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखने एवं उनकी वृद्धि में सहायक तथा विभिन्न प्रकार की बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। मोटे अनाज लोगों को शारीरिक एवं बौद्धिक रूप से लंबे समय तक लगातार कार्य करने में सक्षम बनाते हैं, उनकी प्रमाणिकता "कृषि विश्वविद्यालय पालमपुर के कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किए गए रिसर्च से सिद्ध होती है,जिसमें इन वैज्ञानिकों ने मोटे अनाजों में कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, जिंक, मैग्नीशियम, पोटेशियम**,** फाइबर **,**विटामिन, कैरोटीन, लेथिसिन इत्यादि पोषक तत्व पाए जाते हैं, का दावा करते हैं।"जो पारंपरिक और वैज्ञानिक तथा तार्किक रूप से भी इनकी स्वास्थ्य पोषण एवं खाद्य सुरक्षा की स्वीकारिता से सरकारें अपनी खाद्य पॉलिसी में प्रमुखता दे रही हैं। इनका महत्व भारत और वैश्विक स्तर पर भी बढ़ा रहा है, क्योंकि इनके सेवन से लोगों की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि तथा ये विभिन्न बीमारियों के प्रति संवेदनशील एवं सुरक्षात्मक भी बनाते हैं। पारंपरिक एवं आधुनिक तकनीक का प्रयोग करके इनके उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इन अनाजों को लोगों के दैनिक दिनचर्या के रूप में शामिल करके खाद्य सुरक्षा कुपोषण और एनीमिया जैसी समस्याओं को दूर करके विशेषकर महिलाओं, किशोरियों एवं बालकों में विभिन्न बीमारियों का निदान किया जा सकता है।

बौद्धिक ज्ञान परंपरा के आधार पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ज्वार एवं अन्य मोटे अनाजों से अनेक खाद्य एवं पेय पदार्थों को बनाया जाता था जिनकी स्थानीय खाद्य संस्कृति में मुख्यतः स्वस्थ पौष्टिक भोजन के रूप में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। समसामयिक परिवेश में सरकारों के नीतिगत निर्णय जनसंचार के माध्यमों से आम जनमानस में विशेष कर युवाओं में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जन–चेतना से मोटे अनाजों के प्रति उपभोक्ताओं की रुचि इस ओर बढ़ रही है। मोटे अनाज के उपभोग संबंधी आहार पर 2021 में किए गए एक सर्वेक्षण आधारित अनुसंधान अध्ययन में यह दिखाया गया है, कि सर्वेक्षण के 28 प्रतिशत सहभागियों ने स्वास्थ्य संबंधी कारणों से मोटे अनाजों का सेवन प्रारंभ कर दिया है, जबकि 15 प्रतिशत सहभागियों ने अपने वजन को घटाने के लिए इनका सेवन करना शुरू कर दिया है।इस अनुसंधान अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोगों में अपने स्वास्थ्य के प्रति जन चेतना बढ़ने लगी है।केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारें अपने नीतिगत निर्णय से लोगों में बढ़ती इस जन चेतना में और वृद्धि करने के लिए ठोस कदम उठा सकती हैं।मोटे अनाजों के प्रति बढ़ती जन–चेतना और सरकारों के समन्वित प्रयासों से मोटे अनाज स्वस्थ भारत के निर्माण अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित कर सकते हैं।

सुझाव

1. मोटे अनाजों की ब्रांडिंग स्वास्थ्य के प्रति उपचारात्मक जन चेतना के रूप में की जानी चाहिए।
2. मोटे अनाजों के महत्व को भविष्यगत खाद एवं आहार सुरक्षा के रूप में प्रचारित करना।
3. मोटे अनाजों से आम लोगों को अपने उपभोग के लिए आकर्षित करने के लिए राष्ट्रीय पर्वों, सांस्कृतिक आयोजनों में उनसे बने व्यंजनों एवं खाद्य आहार के माध्यम से किया जा सकता है।

4. मोटे अनाज विभिन्न प्रकार की गंभीर बीमारियों से लड़ने में सक्षम बनाने वाले रिसर्च आंकड़ों को प्रचारित करके लोगों की थाली का हिस्सा बनाया जा सकता है।
5. सरकारें नीतिगत फैसले लेकर मोटे अनाजों को बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए प्रोत्साहित कर सकती हैं जिससे पर्यावरण परिवर्तन जल संकट जैसी गंभीर समस्याओं से निजात पाई जा सकती है।

निष्कर्ष

भारत की पारंपरिक दिनचर्या में प्राचीन काल से ही मोटे अनाजों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारतीय कृषि व्यवस्था में जलवायु तथा जैविक व्यवस्था ने ऐसे अनगिनत पारंपरिक खाद्य पदार्थों को जन्म दिया जो शारीरिक पोषण ही नहीं, बल्कि संपूर्ण स्वास्थ्य व संतुलित जीवन शैली को प्रमुखता देते आए हैं। जिसमें मोटे अनाज जैसे बाजरा, ज्वार, रागी, कोदो, कुटकी सांवा आदि भारत के पारंपरिक भोजन के अभिन्न अंग रहे हैं। यह मोटे अनाज पर्यावरण स्वास्थ्य और कृषि अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी होने के साथ–साथ मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग जैसी बीमारियों के नियंत्रण में भी सहायक हैं। यह वर्तमान समय में उच्च पोषण के कारण एक 'सुपरफूड' के रूप में उभर रहें हैं। स्वस्थ भारत के निर्माण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के साथ ही ये आत्मनिर्भर भारत में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण होगी, यदि मोटे अनाजों को सरकारी नीति जन जागरूकता और बाजार सहयोग के जरिए मुख्य धारा में लाया जाए। भारत की समृद्ध प्राचीन बौद्धिक ज्ञान परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान एवं तकनीक का समन्वित ज्ञान के प्रयोग से मोटे अनाज के उत्पादन में वृद्धि करके उनकी पौष्टिकता,स्वास्थ्य और पर्यावरणीय संवेदनशीलता का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है।

संदर्भ सूची–

1. https://www.nabard.org/pdf/2023/millets-for-health-and-wealth-hindi.pdf
2. https://www.drishtiias.com/to-the-points/paper3/green-revolutio-1
3. https://www.globalhungerindex.org/india.html
4. बसु ,डी० डी० 'भारत का संविधानरू एक परिचय' लेक्सिस, नेक्सिस हरियाणा,2015
5. उपाध्याय,जय जय राम,सेंट्रल लॉ एजेंसी, मोतीलाल नेहरू रोड इलाहाबाद, 2016
6. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 राज्यसभा सचिवालय,नई दिल्ली
7. https://ijfcm.org/archive/volume/10/issue/1/article/14656
8. https://share.google/Bx24X1FPu26gWvzhG
9. कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास को समर्पित, स्वास्थ्य और पोषण
10. भारतीय पोषण संस्थान, हैदराबाद 2019
11. https://www.researchgate.net/publication/342153966 The Role of Small Millets as Functional Food to Combat Malnutrition in Developing Countries
12. http://www.agriculturejournal.org
13. http://www.ideasforindia.in

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन

अवनीश प्रताप सिंह
शोधार्थी,
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, झारखण्ड

सारांश–

संसार में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें शिक्षा में रुचि ना हो आजकल ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से ही शिक्षा का प्रयोग चला आ रहा है आज के भारतीय समाज में शिक्षा का मुख्य कार्य व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति करना है। शिक्षा मानवीय चेतना का वह सर्वांगीण विकास है और ज्योतिमय सुसंस्कृति पद है, जिसमें व्यक्ति का बहुमुखी विकास होता हैद्य शिक्षा किसी भी राष्ट्र का वह बिंदु है जिसके चारों ओर विकास का चक्र घूमता है, राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक आध्यात्मिक तथा मानवीय मानसिक विकास के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण हैद्य शिक्षा के बिना यह सब अधूरे हैं अर्थात शिक्षा वह क्रम है जिसके द्वारा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव है। यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षा केवल विद्यालय या अन्य संस्थाओं से ही प्राप्त की जाए बल्कि किसी भी रूप में कभी भी प्राप्त किया जा सकता हैद्य मनुष्य की तीन मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए मनुष्य कार्य करने के लिए प्रेरित होता है

प्राचीन काल में शिक्षा व्यवस्था जटिल थी गुरु–शिष्य परंपरा थी गुरु अपने शिष्यों को शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास के लिए शिक्षा देता था इसके परिणाम स्वरूप समाज में रहने वाले सभी लोग शिक्षित नहीं हो पाए थे लेकिन आज की प्रचलित भारतीय शिक्षा का प्रारंभ ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों द्वारा किया गया इनका उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना तथा अंग्रेजों के व्यापार को बढ़ावा देना था।

प्रस्तावना–

शिक्षा का अनुकरण मानवीय विकृतियों को उत्पन्न करता है, जिसमें हिंसा एवं पाश्विक प्रवृत्ति मुख्य है विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार– हिंसा स्वयं के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति या किसी समूह या समुदाय के विरुद्ध शारीरिक बल या शक्ति का सभी प्रायः उपयोग है चाहे धमकी स्वरूप या वास्तविक जिसका परिणाम या उच्च संभावना है कि जिसका परिणाम चोट मृत्यु मनोवैज्ञानिक नुकसान दुर्बलता या विकास के रूप में होता हैद्य कई बच्चों और किशोर में कभी–कभी दूसरों के साथ शारीरिक हाथापाई हो जाती है लेकिन अधिकांश बच्चे और किशोर हिंसक व्यवहार जारी नहीं रखते या हिंसा का अपराध में शामिल नहीं होते हालांकि जो बच्चे युवावस्था से पहले हिंसक हो जाते हैं उनसे अपराध होने का अधिक खतरा हो जाता है या हो सकता है इस बात की बहुत कम सबूत है कि हिंसक व्यवहार आनुवांशिक दोषों या गुणसूत्र असामान्यताओं की कारण होता है।

मीडिया– (जैसे सोशल मीडिया और समाचार प्लेटफार्मों) के माध्यम से हिंसा के खुलासे तथा बाल शोषण और घरेलू हिंसा की खुलासे से हिंसा और हथियारों तक पहुंच के बीच एक संबंध प्रतीत होता है

वर्तमान समय में हिंसा और बाल शोषण के साथ मीडिया का भी प्रभाव देखा जा रहा है अभी कुछ समय पहले महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने बच्चों के शोषण एवं ऑनलाइन यौन दुर्व्यवहार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर एक गठबंधन बनाने की घोषणा की।

मंत्रालय का उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी व्यापक प्रणाली का विकास करना है जिसमें बच्चों के माता–पिता स्कूलों समुदायों और गैर सरकारी संगठनों स्थानीय सरकारों के साथ–साथ पुलिस वह वकील को भी शामिल किया जाना है। बच्चों के साथ शारीरिक, मानसिक अथवा भावनात्मक स्तर पर किया जाने वाला दुर्व्यवहार बाल दुर्व्यवहार कहलाता है हालांकि हम लोग दुर्व्यवहार में समानता यौनिक एवं शारीरिक शोषण को शोषण समझते हैं जबकि मानसिक तथा भावनात्मक स्तर पर होने वाला बच्चों के मनस पर दीर्घकालिक प्रभाव डालता है।

बाल यौन शोषण का दायरा केवल बलात्कार या गंभीर यौन आघात तक ही सिमटा नहीं है, बल्कि बच्चों को इरादतन यानि कृति दिखाना ,अनुचित कामुक बातें करना, गलत तरीके से छुना, जबरन यौनकृतियों के लिए मजबूर करना, भोलेपन का फायदा उठाना, चाइल्ड पोर्नोग्राफी बनाना आदि बातें सोशल के अंतर्गत आते हैं। 2002 में जारी विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 18 वर्ष से कम उम्र के 7–9 प्रतिशत लड़के एवं 19–7 प्रतिशत लड़कियां यौन हिंसा की शिकार है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार 2011 में बाल एवं शोषण के 33098 मामले दर्ज किए गए। भारत में प्रत्येक मिनट पर 16 से कम उम्र के एक बच्चे तथा प्रत्येक 13 घंटे पर 10 से कम उम्र के एक बच्चे का बलात्कार होता है। यूनिसेफ द्वारा 2005 से 2013 के बीच की यौन शोषण पर किए गए अध्ययन के आंकड़े बताते हैं कि भारत की 10 प्रतिशत लड़कियों को जहां 10 से 14 वर्ष से कम उम्र में यौन व्यवहार का सामना करना पड़ा वहीं 30 प्रतिशत ने 15 से 19 वर्ष के दौरान एवं दुर्व्यवहार को झेला।

बाल अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र का बाल अधिकार कन्वेंशन(बतब) एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जो सदस्य देशों को कानूनी रुप से बाल अधिकारियों की रक्षा के लिए बाध्य करता है। भारत में बाल एवं शोषण एवं दुर्व्यवहार के खिलाफ सबसे प्रमुख कानून 2012 में पारित किया उन्होंने शोषण के खिलाफ बच्चों का संरक्षण कानून (CRC) इस समय अपराधों को चिन्हित कर उनके लिए सख्त सजा निर्धारित की गई। साथ ही सुनवाई के लिए स्पेशल कोर्ट का भी प्रावधान है। स्कूलों में जहां अनिवार्य मनोवैज्ञानिक कैंप होने चाहिए तो वही डॉक्टर, मीडिया व पुलिस को भी इन घटनाओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।

बाल हिंसा एवं शोषण–

विधाता की सर्वोत्तम कृति मानव है व्यक्ति अपने जन्म के समय और असहाय होता है और दूसरों की सहायता से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जैसे–जैसे वह बड़ा होता है वैसे–वैसे वह उनका पूरा करना और अपने वातावरण में अनुकूलन करना सीखना है। अभी हाल ही में एक डाटा के अनुसार बिहार राज्य की मुजफ्फरपुर जिले में बालिका गृह कांड की एक समस्या सामने आई जिसमें टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस मुंबई की एक टीम द्वारा 2018 में एनजीओ सेवा संकल्प एवं विकास समिति सर्वेक्षण किया गया थाद्य इसी संस्था द्वारा मुजफ्फरपुर में बालिका गृह का संचालन किया जा रहा था। बता दे कि मुजफ्फरपुर के बालिका संरक्षण गृह में 34 छात्राओं की यौन उत्पीड़न की पुष्टि के बात हुई, इसमें मीडिया का बहुत बड़ा योगदान रहा पूछताछ में पता चला था की लड़कियों को नशीली दवाई देकर उनके साथ मारपीट कर शोषण किया जाता था इस मामले को सीबीआई जांच के बाद कोर्ट ने इस शेल्टर होम के संचालक और मुख्य आरोपी बृजेश ठाकुर को उम्रकैद की सजा सुनाई थी।

कैलाश सत्यार्थी का मूल नाम कैलाश शर्मा(जन्म 11 जनवरी 1954 विदिशा मध्य प्रदेश भारत)–भारतीय समाज सुधारक जिन्होंने इसके खिलाफ अभियान चलाया और भारत के अन्य जगहों पर बालश्रम और शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार की वकालत की 2014 में उन्हें किशोर पाकिस्तानी शिक्षा अधिवक्ता मलाला यूसुफजई के साथ "बच्चों और युवाओं के दमन के खिलाफ उनके संघर्ष और सभी बच्चों की शिक्षा के अधिकार के लिए नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

मलाला यूसुफजई (जन्म 12 जुलाई 1997 को बच्चों के अधिकारों की कार्यकर्ता होने के लिए माना जाता हैद्य वह पाकिस्तान के खैबर–पख्तूनरवा प्रांत के साथ जिले में स्थित मिंगोरा शहर की एक छात्रा है। 13 साल की उम्र में ही वह तारीफ–ए–तालिबान शासन के अत्याचारों के बारे में एकछन्हा नाम के तहत बीबीसी के लिए ब्लॉगिंग द्वारा स्वात के लोगों में नायिका बन गई।

आज हमारे देश भारत में आए दिन हिंसा और बाल शोषण हो रहा है कहीं ना कहीं मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का कार्य किया जा रहा हैद्य लोकतांत्रिक देश में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका क्रिया–कलापों पर नजर रखने के लिए मीडिया को चौथे स्तंभ के रूप में जाना जा सकता हैद्य किसी भी सामाजिक बुराइयों को मीडिया दिखाने या उस पर रोक कैसे लगाया जाए किसी भी घटना के बारे में आम जनता तक पहुंचने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है।

"सब बच्चों को अधिकार एक समान।
बाल अधिकार इसी का नाम"।।

अर्थात हर बच्चा पढ़ेगा तभी तो जीवन में आगे बढ़ेगा देखा जाए तो बाल मजदूरी एक बच्चे के जीवन की हत्या करने के समान है। बाल संरक्षण वर्तमान अस्तित्व में भी कन्या भ्रूण हत्या की प्रथाएं प्रचलित है और दूसरी जो बच्चे पैदा होते हैं और जीवित रहते हैं, उन्हें कई उल्लंघनों का अनुभव होता है। दुनिया में सबसे ज्यादा कामकाजी बच्चे भारत में हैं। राष्ट्रीय अपराधी रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) ने 2018 में बच्चों के खिलाफ विभिन्न अपराधों के 39827 मामले दर्ज किया, जिनमें बालविवाह, आर्थिक शोषण, युवा लड़कियों को देवी देवताओं को समर्पित करने की देवदासी परम्परा जैसी प्रथाए इत्यादि अभी भी प्रचलित है, जिसको कहीं ना कहीं मीडिया के माध्यम से लोगों तक पहुंचा जा रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं।

1–हिंसा को कम करने में मीडिया के प्रभाव का अध्ययन।
2– बालक व बालिकाओं पर होने वाले हिंसा को रोकने में मीडिया का योगदान का अध्ययन।
3–बालिकाओं का हो रहे शोषण के खिलाफ प्रिंट मीडिया के योगदान का अध्ययन।
4– हिंसा और शोषण को कम करने में मीडिया के प्रभाव का अध्ययन।

सुझाव–

केवल मानव ही एक मात्र जैसा प्राणी है जो सदियों से एकत्र किए गए ज्ञान का लाभ उठा सकते हैं। संबंधित शोध अध्ययन से शोधकर्ता यह निश्चित कर सकता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शोध का संबंधित विषयों पर पहले कार्य किया जा चुका है अथवा नहीं। प्रस्तुत शोध की पृष्ठभूमि तथा परिप्रेक्ष्य में संबंधित साहित्य की खोज करना आवश्यक है। इस अध्ययन की आवश्यकता को प्रथम अध्याय में पहले ही निश्चित किया जा चुका है। वर्तमान शोध की परिप्रेक्ष्य में यह पता लगा लेना आवश्यक है कि इस क्षेत्र में कितने शोध हो चुके हैं तथा किस प्रकार की शोध अध्ययनों में किस प्रकार के उद्देश्य निश्चित किए गए हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कौन से शोध–उपकरण, शोध–प्रविधि, सांख्यिकी एवं तकनीकी का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही यह ज्ञात करना आवश्यक है कि पूर्व में किए गए अध्ययनों के क्या परिणाम है। तथा उसके मुख्य निष्कर्ष क्या प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार की शोध अध्ययनों तथा अन्य संबंधित साहित्य से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में और उपयोगी अध्ययन क्या हो सकते हैं। इस प्रकार से संबंधित साहित्य का अध्ययन करने के उपरांत वर्तमान शोध अध्ययन हेतु उद्देश्य परिकल्पना शोधविधि उपयुक्त शोध उपकरण एवं सांख्यिकी तकनीकी का चयन करना सुविधाजनक हो जाता है। किसी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धांत एवं शोधों से अवगत होना चाहिए।

1– राज ब्यूरो पटना (2023)

राज्य में इस साल जनवरी से अगस्त माह के बीच 5958 बच्चे गायब हुए हैं। इनमें 5117 लड़कियां जबकि 841 लड़के हैं, बच्चों में 85 प्रतिशत लड़कियां हैं। पुलिस एवं मीडिया के सहयोग से 383 लड़कों और 2416 लड़कियों को बरामद किया गयाद्य राज्य से गायब हुए 3415 बच्चे अभी भी लापता

है। इन सब मामलों में मीडिया को और अधिक पारदर्शिता रखनी चाहिए जिससे कि आम जनता को इसकी जानकारी दी जा सके और वो जागरूक हो सके।

2–एनसीआरबी की रिपोर्ट– कहती है कि बच्चों के साथ शारीरिक व्यवहार के मामले में उत्तर प्रदेश देश के अन्य राज्यों में सबसे आगे हैद्य इसके बाद महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश, दिल्ली में यह आंकड़ा 769 है वहीं जम्मू–कश्मीर में महज दो मामले ऐसे आए हैं।

3–नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (2016)

अपराध पर आधारित आखिरी रिपोर्ट पर नजर डाले तो देश भर में बच्चों पर आपराधिक गतिविधियों दर्ज हुआ है 2014 में बच्चों के साथ अपराध की 89423 घटनाएं दर्ज हुई है। इसके बाद 2015 में 94172 और 2016 में 106958 घटनाएं दर्ज हुई है इन तीन सालों में बच्चों के साथ अपराध की दर 24 प्रतिशत तक पहुंच गई है 2014–15 में 5.3 फीसदी की तुलना में 2015–16 में 13.6 फीसदी अपराध हुआ।

हिंसा और बाल–शोषण पर मीडिया का प्रभाव को देखा जा सकता है। शिक्षा के अभाव में हिंसा और शोषण की कल्पना करना अनुचित होगा मीडिया के विकास के लिए लोगों में सशक्तिकरण के साथ–साथ सामाजिक सशक्तिकरण एवं आर्थिक सशक्तिकरण की अत्यंत आवश्यकता है। जिसमें बालक एवं बालिकाओं का अपना सर्वांगीण विकास कर सके बालिका सशक्तिकरण के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिया जा सकते है।

01–वर्तमान समय में बालिका के शैक्षिक विकास को ध्यान में रखते हुए हिंसा और बाल शोषण कार्यक्रम के अलावा समय–समय पर आवश्यकता के अनुसार अन्य बाल शोषण और हिंसा कार्यक्रम योजनाए चलाई जानी चाहिए।

02–बालिका और बालक शोषण को कम करने के स्तर को बढ़ाने के लिए बालको के भाति बालिकाओं को भी जागरुक

करना आवश्यक है।

03–हिंसा और बाल शोषण के बारे में बालक और बालिकाओं को शिक्षा एवं विद्यालय के माध्यम से बताया जाना

चाहिए।

04–बालिकाओं को आगे बढ़ाने के लिए उनको सही–गलत का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

05–हिंसा को कम करने में मीडिया का प्रभाव के बारे में बालक एवं बालिकाओं को बताया जाय।

06–बालको को हिंसा के बारे में अवगत कराना साथ ही बालिकाओं को भी जानकारी देना।

07–बालिकाओं को सामाजिक रुप से सशक्त बनाने के लिए बालिकाओं की सुरक्षा को बढ़ाते हुए अन्य शहर राज्य व

देश में कार्य हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिससे उनमें पूर्ण विकास हो सके।

08–बालिकाओं को सशक्त बनाने के लिए बालिकाओं की शिक्षा प्रणाली में आधुनिक संचार साधनों का पूर्ण प्रयोग

तथा मीडिया के विभिन्न माध्यमों जैसे–टेलीविजन समाचारपत्र मासिक–पत्रिका तथा इंटरनेट के माध्यम से बालिका

सशक्तिकरण को बढ़ाया जा सकता है।

09–बालिकाओं एवं बालकों को हिंसा के बारे में जानकारी के साथ–साथ विचारों में भी अपनाने के लिए जोर दिया

जाये।

10–बालक एवं बालिकाओं को पूर्ण ज्ञान के साथ–साथ शोषण के विरुद्ध लड़ने के अधिकार से अवगत कराने के लिए

ग्रामीण एवं विकास खण्ड स्तर पर बालिका सशक्तिकरण समूह की स्थापना एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी

चाहिए।

आंकड़ों की संकलन एवं विश्लेषण–

अनुसंधान के लिए समस्या में संबंधित परिकल्पना के निर्माण के लिए उसके परीक्षण के लिए आंकड़ों का संकलन की आवश्यकता होती है इसके लिए विशिष्ट उपकरण जो कि उसे समस्या के अनुरूप है प्रयोग आंकड़ों के लिए किया जाता है यह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष अनेक शास्त्रों से उपलब्ध हो सकता है तथा वह उपकरण विश्वसनीय और वैद्या होना चाहिए। प्रस्तुत शोध के अंतर्गत हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया गया है अतः प्रस्तुत शोध के इससे संबंधित आंकड़ों की व्याख्या विवेचना एवं निष्कर्ष के लिए चार परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। वैशाली जिले के अंतर्गत ब्लाक लालगंज, भगवानपुर, वैशाली और हाजीपुर का चुनाव किया गया, जिसमें 80 उत्तर दाताओं का चयन किया गयाद्य उत्तर दाताओं से प्राप्त जानकारी आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैद्य

क्रम	विकास खंड का नाम	ग्राम पंचायत का नाम	हिंसा और शोषण वाले बच्चों की संख्या	योग
1	लालगंज	टोटहा समसपुरा	10 10	20
2	भगवानपुर	वानथु प्रतापताड	10 10	20
3	वैशाली	वालुकाराम महावीरपुरी	10 10	20
4	हाजीपुर	बागमली हथसारगंज	10 10	20

निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोधकर्ता में प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए है।

उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि के लिए प्रदत्तो के विश्लेषण के आधार पर समस्त 80 उत्तरदाताओं में 95.78 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जहा शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए साक्षर भारत कार्यक्रम में लाभांवित हुए वही 4.22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शिक्षा को उचित जानकारी के अभाव में साक्षर भारत कार्यक्रम से लाभांवित नहीं हुए।

अतः इस गणना से ज्ञात होता है। कि महिलाओं एवं पुरुषों में हिंसा और बाल शोषण पर मीडिया के प्रभाव का अध्ययन पाया जाएगा ।

निष्कर्ष की पुष्टि के लिए प्रदत्तो के विश्लेषण के आधार पर समस्त 80 उत्तरदाताओं में से 91.35 प्रतिशत जहां बालक और बालिकाओं को समान मानते हुए बालिकाओं के पक्ष में सकारात्मक विचार प्रकट किया वहीं 8.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शिक्षा एवं बालिकाओं की जानकारी के अभाव में बालिकाओं को बालकों के समान मानते हुए अपना विचार नहीं के रुप मे प्रकट किया । अतः इस गणना से ज्ञात होता हैं । बलिका–बालक की हिंसा और शोषण को कम करने में मीडिया का प्रभाव पाया गया।

संदर्भित ग्रंथ सूची–

1. डब्ल्यू आर बोर्ज 1978 " शैक्षिक अनुसंधान एवं विधिया" अग्रवाल पब्लिकेशन मेरठ
2. राम सकल पाण्डेय उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा अग्रवाल पब्लिकेशन मेरठ
3. हिंदू लॉ, ईस्टर्न ला बुक कंपनी लखनऊ द्वितीय संस्करण 2003
4. पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली।
5. प्लानिंग कमीशन (1956) सोशल लोजिस्लेशन इट्स रोल इन सोशल वेलफेयर

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं में बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अंजली द्विवेदी
एम.ए., एम. फिल, पी.एच–डी.
समाजशास्त्र

सारांश
अपराध एक सार्वभौमिक सामाजिक प्रघटना है जो प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। परंपरागत रूप से अपराध को पुरुषों से अधिक संबंधित माना जाता रहा है, किंतु वर्तमान समय में महिलाओं की अपराधों में संलिप्तता भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक विषय के रूप में उभरकर सामने आ रही है। सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक दबाव, नगरीकरण, पारिवारिक विघटन, तकनीकी विकास तथा बदलती जीवनशैली ने महिलाओं की भूमिकाओं और व्यवहारों को प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अपराधों की प्रकृति एवं स्वरूप में भी परिवर्तन देखा जा रहा है।
प्रस्तुत अध्ययन में वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं में बढ़ती अपराधी प्रवृत्ति के कारणों, स्वरूपों तथा सामाजिक प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है एवं यह द्वितीयक स्रोतों पर आधारित अध्ययन है तथा इसमें अपराधशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिला अपराध केवल व्यक्तिगत व्यवहार का परिणाम नहीं है, बल्कि इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

मुख्य शब्द : महिला अपराध, अपराधी प्रवृत्ति, सामाजिक परिवर्तन, अपराधशास्त्र, महिला सशक्तीकरण

प्रस्तावना

अपराध समाज की एक जटिल एवं बहुआयामी समस्या है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए नियम, मानदंड एवं कानून निर्धारित करता है। जब कोई व्यक्ति इन मानदंडों का उल्लंघन करता है तो उसका व्यवहार अपराध की श्रेणी में आता है।

भारतीय समाज में लंबे समय तक महिलाओं को त्याग, करुणा, सहनशीलता एवं नैतिकता का प्रतीक माना जाता रहा है। इसी कारण महिला अपराधों को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया। परंतु वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों के कारण महिलाओं की सामाजिक भूमिका में व्यापक परिवर्तन आया है। इसके साथ ही महिला अपराधों के स्वरूप में भी परिवर्तन देखने को मिला है।

आज महिलाएँ केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय, राजनीति तथा तकनीकी क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में कुछ परिस्थितियों में महिलाएँ अपराधों की ओर भी आकर्षित होती दिखाई देती हैं। अतः महिला अपराध का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं में बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति की अवधारणा, स्वरूप, प्रकार एवं उससे संबंधित कारणों का अध्ययन करना है।

शोध पद्धति :– प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है एवं यह शोध–प्रपत्र पूर्णतः द्वितीयक स्रोत – शोध–पत्र एवं शोध–प्रबंध, सरकारी प्रतिवेदन, NCRB रिपोर्टें, पत्र–पत्रिकाए, विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत पर आधारित है।

साहित्य समीक्षा :–

1. ओट्टो पोलाक (1950) – ने अपनी पुस्तक "The Criminality of Women (1950)" में उन्होंने तर्क दिया कि सामाजिक एवं न्यायिक व्यवस्था महिलाओं के प्रति अपेक्षाकृत उदार रहती है इसलिए महिलाओं के अनेक अपराध आधिकारिक आँकड़ों में दर्ज नहीं हो पाते हैं।

2. राम आहूजा (2000) – ने अपनी पुस्तक "Criminology" में भारतीय समाज में अपराध के सामाजिक कारणों का विश्लेषण किया। उन्होंने बताया कि गरीबी, पारिवारिक विघटन, घरेलू हिंसा एवं सामाजिक असमानता महिला अपराध को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं।

3. National Crime Records Bureau (2023) की रिपोर्ट अपराध के बदलते स्वरूप की ओर संकेत करती है। प्रस्तुत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं की संलिप्तता आर्थिक अपराधों, साइबर अपराधों एवं कुछ संगठित अपराधों में दिखाई दे रही है।

4. द वीक (2026) में प्रकाशित एक समाचार–विश्लेषण के अनुसार बेंगलुरु में एक महिला पर अपने परिचित व्यक्ति की हत्या की योजना बनाने का आरोप लगाया गया। इस घटना ने भावनात्मक अस्थिरता, असफल संबंधों एवं मनोवैज्ञानिक तनाव को अपराध के संभावित कारकों के रूप में उजागर किया।

5. राष्ट्रीय समाचार रिपोर्ट (2025) में चर्चित राजा रघुवंशी हत्याकांड से संबंधित जांच में सोनम रघुवंशी का नाम सामने आया। इस प्रकरण ने विवाह, विश्वास, भावनात्मक संबंधों एवं अपराध के मध्य संबंधों पर व्यापक बहस को जन्म दिया। यद्यपि मामला न्यायिक प्रक्रिया से संबंधित रहा, फिर भी इसने महिला अपराध के समाजशास्त्रीय अध्ययन को नई दिशा प्रदान की।

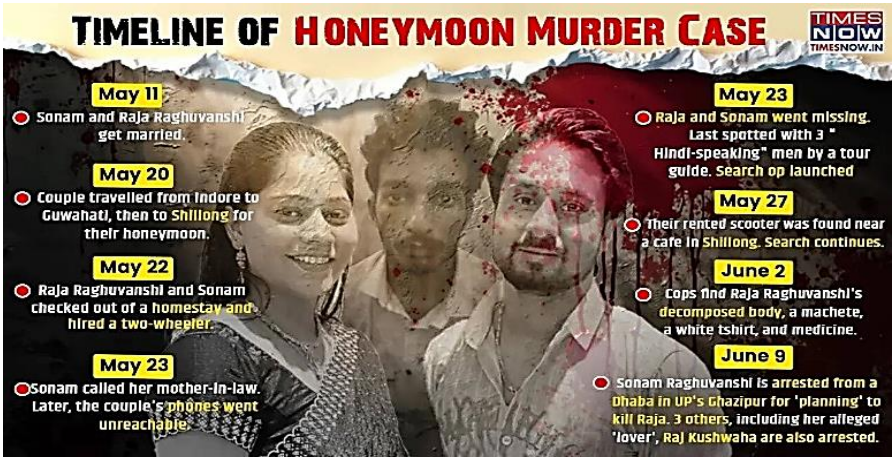

6. साइबर अपराध संबंधी समकालीन अध्ययनों (2025–2026) से ज्ञात होता है कि डिजिटल तकनीकों के विस्तार के साथ कुछ महिलाएँ ऑनलाइन वित्तीय धोखाधड़ी, फर्जी पहचान तथा साइबर अपराधों में भी संलिप्त पाई गई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिला अपराध का स्वरूप पारंपरिक अपराधों से आगे बढ़कर तकनीकी अपराधों तक विस्तृत हो रहा है।

7. हिन्दुस्तान टाइम्स (2026) में प्रकाशित एक रिपोर्ट में फरीदाबाद की एक महिला पर अपने पति की हत्या की साजिश रचने का आरोप लगा। अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि वैवाहिक तनाव, पारिवारिक संघर्ष एवं व्यक्तिगत संबंधों में उत्पन्न जटिलताएँ कुछ परिस्थितियों में गंभीर अपराधों की पृष्ठभूमि तैयार कर सकती हैं।

8. लॉम्ब्रोसो एवं फेररो (1895) – ने अपनी पुस्तक 'The Female Offender, (1895)' में महिला अपराध का अध्ययन किया। उनके अनुसार महिलाओं में अपराध की प्रवृत्ति पुरुषों की अपेक्षा कम होती है, किंतु विशेष परिस्थितियों में यह विकसित हो सकती है। उन्होंने महिला अपराध को जैविक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों से प्रभावित माना।

9. Islam & Saikia (2025) ने "Exploring Crime Against Women in India: Socio & Economic and Spatial Dimensions" (2025) में महिलाओं से संबंधित अपराधों के क्षेत्रीय एवं सामाजिक आयामों का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि नगरीकरण, सामाजिक असमानता तथा क्षेत्रीय परिस्थितियाँ अपराध की प्रकृति को प्रभावित करती हैं।

10. Prashant Verma एवं सहयोगियों ने "Predictive Modeling of Domestic Violence in India" (2026) में घरेलू हिंसा और महिलाओं से जुड़े अपराधों के विश्लेषण हेतु आधुनिक सांख्यिकीय एवं मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग किया। अध्ययन से पता चला कि सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के आधार पर हिंसा की संभावनाओं का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

11. दैनिक भास्कर (2025) वर्ष 2025 में मेरठ में घटित मुस्कान रस्तोगी प्रकरण ने महिला अपराध के बदलते स्वरूप की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया। विभिन्न समाचार रिपोर्टों के अनुसार यह मामला हत्या एवं अपराध की सुनियोजित योजना से संबंधित था। इस घटना ने महिलाओं की हिंसात्मक अपराधों में संभावित संलिप्तता पर नई बहस को जन्म दिया। अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि भावनात्मक तनाव, व्यक्तिगत संबंधों में जटिलता तथा वैवाहिक संघर्ष अपराधी व्यवहार को प्रभावित कर सकते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह मामला सामाजिक नियंत्रण एवं पारिवारिक संरचना में परिवर्तन को भी दर्शाता है। मर्टन के तनाव सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक एवं व्यक्तिगत दबाव विचलित व्यवहार को जन्म दे सकते हैं। यह प्रकरण महिला अपराध के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयामों को समझने में महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रेमी के साथ मिलकर पति के 15 टुकड़े कर ड्रम में भरकर सीमेंट से कर दी चुनाई

संवाद न्यूज एजेंसी

वारदात के बाद प्रेमी संग शिमला घूमने गई आरोपी,पत्नी के जन्मदिन पर 24 फरवरी को लंदन से मेरठ आए थे सौरभ

मेरठ। ब्रह्मपुरी थानाक्षेत्र के अंतर्गत इंदिरानगर मास्टर कॉलोनी में लंदन से लौटे सौरभ कुमार (29) की पत्नी मुस्कान रस्तोगी ने प्रेमी साहिल शुक्ला के साथ मिलकर हत्या कर दी। आरोपियों ने चार मार्च को शव के 15 टुकड़े ड्रम में रखकर उपर से चुनाई कर दी।

मुस्कान अपनी पांच साल की बेटी को मायके में छोड़कर प्रेमी के साथ शिमला घूमने चली गई। वापस लौटकर मुस्कान ने अपने पिता को सौरभ की हत्या करने की जानकारी दी। मंगलवार को प्रमोद कुमार और मुस्कान के साथ ब्रह्मपुरी थाने



मृतक सौरभ आरोपी पत्नी मुस्कान



आरोपी साहिल को ले जाती पुलिस।

पति को बेहोश कर प्रेमी को घर बुलाया:सौरभ को पत्नी मुस्कान के साहिल से संबंधों की जानकारी थी। इस कारण कई दिनों से पति-पत्नी के बीच विवाद चल रहा था। इसी विवाद में 4 मार्च की रात मुस्कान ने सौरभ को खाने में पहले बेहोशी की दवा दी। इसके बाद प्रेमी साहिल को घर पर बुला लिया। दोनों ने सौरभ के सीने में चाकू से ताबड़तोड़ वारकर हत्या कर दी। इसके बाद शव के छुरे से लगभग 15 टुकड़े कर इन्हें प्लास्टिक ड्रम में भर दिया। इसी ड्रम में ऊपर से सीमेंट और डस्ट का घोल बनाकर शव के टुकड़ों को छुपा दिया।

12. **The Times of India** (2025) – वर्ष 2025 में महाराष्ट्र के नालासोपारा क्षेत्र में एक पुरूष का शव उसके घर के फर्श के नीचे दबा हुआ मिला था। समाचार पत्रों के अनुसार मृतक की पत्नी और एक पड़ोसी युवक घटना के बाद से लापता बताए गए थे, जिससे जांच एजेंसियों का संदेह और गहरा हुआ। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह मामला पारिवारिक विघटन, भावनात्मक संघर्ष तथा सामाजिक नियंत्रण में कमी को दर्शाता है। इस घटना ने वैवाहिक संबंधों, पारिवारिक तनाव तथा अपराध की सुनियोजित प्रकृति पर नए प्रश्न खड़े किए हैं।

Printed from
THE TIMES OF INDIA

Buried beneath new tiles: Nalasopara man's body found after weeks-long phone silence raises alarm; wife, neighbour missing

TNN | Jul 22, 2025, 10.51 AM IST



VASAI: The body of a 32-year-old man was found buried in his house at Nalasopara (east) Monday evening. His wife is missing, the police said. The cellphone of the man, Vijay Chauhan, had been switched off for almost three weeks which prompted his brothers to visit the chawl where he lived. A set of newly laid floor tiles in one corner of the house, and the whereabouts of the wife, Chaman Devi (28) being not known raised the family's suspicion, the police said.

Curiously, a 20-year-old man from their neighbuorhood has also been missing for a few days, the police said, clarifying that they are not sure if the missing man has anything to do with the case at hand.

उपलब्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि महिला अपराध का स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हुआ है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि गरीबी, घरेलू हिंसा, बेरोजगारी, सामाजिक उपेक्षा तथा मानसिक तनाव महिलाओं को अपराध की ओर प्रेरित कर सकते हैं। समकालीन शोध यह भी संकेत देते हैं कि साइबर अपराध तथा आर्थिक अपराधों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है।

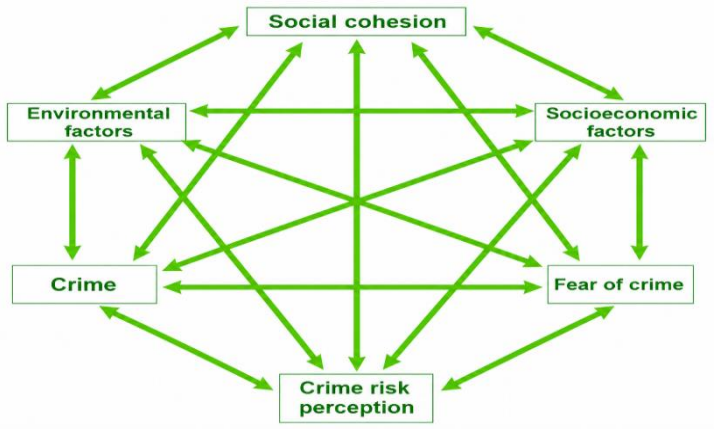

महिलाओं में बढ़ती अपराधी प्रवृत्ति के प्रमुख कारण

1. आर्थिक कारण – गरीबी, बेरोजगारी एवं आर्थिक असुरक्षा कई बार महिलाओं को अपराध की ओर प्रेरित करती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण कुछ महिलाएँ अवैध गतिविधियों में सम्मिलित हो जाती हैं।

2. पारिवारिक विघटन – घरेलू हिंसा, वैवाहिक असंतोष, दहेज उत्पीड़न एवं पारिवारिक तनाव महिला अपराध के महत्वपूर्ण कारणों में से हैं।

3. सामाजिक परिवर्तन – नगरीकरण, औद्योगीकरण, उपभोक्तावाद एवं भौतिकवादी संस्कृति ने व्यक्तियों की आकांक्षाओं को बढ़ाया है। जब आकांक्षाएँ एवं उपलब्ध संसाधनों में अंतर होता है तो अपराधी प्रवृत्ति विकसित हो सकती है।

4. मनोवैज्ञानिक कारण – अवसाद, तनाव, अकेलापन तथा प्रतिशोध की भावना कई बार आपराधिक व्यवहार को जन्म देती है।

5. तकनीकी एवं डिजिटल प्रभाव – डिजिटल माध्यमों की बढ़ती पहुँच के कारण साइबर अपराधों में महिलाओं की संलिप्तता भी बढ़ी है।

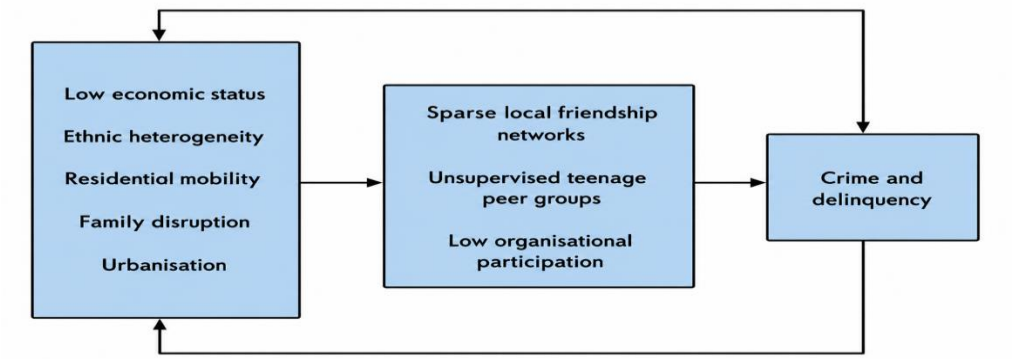

अपराध का प्रकार	उदाहरण
आर्थिक अपराध	धोखाधड़ी, गबन
साइबर अपराध	ऑनलाइन ठगी
मादक पदार्थ अपराध	तस्करी
हिंसात्मक अपराध	हत्या, हमला
संगठित अपराध	मानव तस्करी
अन्य अपराध	जालसाजी, धोखाधड़ी

समाजशास्त्रीय विश्लेषण – महिला अपराध को केवल व्यक्तिगत दोष के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह सामाजिक परिस्थितियों, अवसरों की उपलब्धता, आर्थिक असमानता तथा लैंगिक संरचना से प्रभावित होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार जब व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं उपलब्ध संसाधनों के बीच असंतुलन उत्पन्न होता है तो सामाजिक तनाव बढ़ता है। यही तनाव कई बार आपराधिक व्यवहार को जन्म देता है। महिलाओं के संदर्भ में लैंगिक भेदभाव, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक उपेक्षा तथा घरेलू हिंसा जैसी परिस्थितियाँ अपराध की पृष्ठभूमि तैयार कर सकती हैं।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं की अपराधों में संलिप्तता एक जटिल एवं बहुआयामी सामाजिक घटना के रूप में उभरकर सामने आ रही है। परंपरागत रूप से महिलाओं को परिवार, नैतिकता एवं सामाजिक मूल्यों का संरक्षक माना जाता रहा है, किंतु बदलती सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ उनके जीवन एवं व्यवहार को प्रभावित कर रही हैं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति का कोई एक कारण नहीं है बल्कि इसके पीछे अनेक सामाजिक–आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा पारिवारिक कारकों का संयुक्त प्रभाव पड़ रहा है। अध्ययन में यह पाया गया कि आर्थिक दबाव, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन, वैवाहिक तनाव, घरेलू हिंसा, सामाजिक असमानता, उपभोक्तावादी संस्कृति तथा मानसिक तनाव जैसी परिस्थितियाँ महिलाओं को अपराध की ओर प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक तकनीकी विकास और सोशल मीडिया के विस्तार ने अपराध के नए–नए अवसर भी उपलब्ध करा रहें हैं, जिसके कारण साइबर अपराध एवं आर्थिक अपराधों में महिलाओं की संलिप्तता के कुछ उदाहरण देखने को मिल रहे हैं।

शोध के दौरान अध्ययन किए गए समकालीन मामलों जैसे मुस्कान रस्तोगी प्रकरण, सोनम रघुवंशी प्रकरण तथा अन्य चर्चित घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि कुछ परिस्थितियों में भावनात्मक संघर्ष, व्यक्तिगत संबंधों की जटिलताएं प्रतिशोध की भावना तथा सामाजिक दबाव गंभीर अपराधों का कारण बन सकते हैं। हालांकि इन घटनाओं के आधार पर समस्त महिलाओं के संबंध में कोई सामान्य निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा, फिर भी ये मामले महिला अपराध के बदलते स्वरूप को समझने में महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करते हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो महिला अपराध केवल व्यक्तिगत असफलता या नैतिक विचलन का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाए अवसरों की उपलब्धता, सामाजिक नियंत्रण की स्थिति तथा बदलती जीवनशैली से भी प्रभावित होता है। मर्टन का तनाव सिद्धांत, सामाजिक अधिगम सिद्धांत तथा नारीवादी दृष्टिकोण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अपराधी व्यवहार का निर्माण सामाजिक परिस्थितियों और अनुभवों के प्रभाव में होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि महिलाओं में बढ़ती अपराधी प्रवृत्ति को रोकने के लिए केवल दंडात्मक उपाय पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए महिला शिक्षा, आर्थिक सशक्तीकरण, पारिवारिक परामर्श, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, लैंगिक समानता तथा सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देना आवश्यक है। साथ ही महिलाओं के लिए सुरक्षित, सहयोगात्मक एवं सकारात्मक सामाजिक वातावरण का निर्माण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि समाज और राज्य मिलकर इन मूलभूत कारणों पर कार्य करें तो महिला अपराध की प्रवृत्ति को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है तथा एक अधिक संतुलित एवं सुरक्षित समाज की स्थापना की जा सकती है।

सुझाव –

- महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए।
- महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- घरेलू हिंसा एवं लैंगिक भेदभाव को कम करने के लिए प्रभावी उपाय किए जायें।
- साइबर अपराधों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाए, महिला अपराधियों के पुनर्वास कार्यक्रमों को मजबूत बनाया जाए।
- मानसिक स्वास्थ्य एवं परामर्श सेवाओं का विस्तार किया जाए।

संदर्भ सूची–

- महिला अपराध एवं अपराधशास्त्र विषयक प्रकाशित शोध–पत्र।
- समाजशास्त्र एवं अपराधशास्त्र संबंधी संदर्भ ग्रंथ।
- National Crime Records Bureau, *Crime in India Reports*।
- National Commission for Women, वार्षिक प्रतिवेदन।
- Ministry of Women and Child Development, विभिन्न रिपोर्टें।

The Opinion
International Journal of Arts & Social Sciences
Published by Srijan Research Foundation, Varanasi India
Vol.14, N. 27, December 2025
https://theopinion.navjyotijournal.in

ग्रामीण जीवन में जनसंचार का प्रभाव

रंजना देवी
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
नरोत्तम सिंह, पद्म सिंह, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मगरहां मीरजापुर)
डॉ. अशोक कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
नरोत्तम सिंह, पद्म सिंह, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मगरहां मीरजापुर
अभिमान सिंह,
प्रवक्ता, एम.एल.आई.इ.टी. कानपुर

सारांश-
ग्रामीण जीवन पर जनसंचार का गहरा सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जनसंचार के माध्यम से ग्रामीणों को आधुनिक खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य और सरकारी योजनाओं की प्रति जागरूक किया है जिससे ग्रामीण जीवन की सामाजिक- आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है। इंटरनेट और मोबाइल ने गाँव के जीवन को मुख्य धारा से जोड़ा है, साथ ही साथ पारंपरिक सांस्कृतिक पहचान में परिवर्तन भी आ रहा है। जनसंचार में ग्रामीण जीवन को पारंपरिक रूढ़ियों से बाहर निकाल कर आधुनिकता की ओर आगे से बाहर निकालकर आधुनिकता की ओर आगे किया है । यह शिक्षा मनोरंजन और सूचना का एक सशक्त माध्यम बनकर ग्रामीण जीवन के विकास में मुख्य भूमिका निभा रहा है। संचार ग्रामीण जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। संचार के बिना जीवन की कल्पना कठिन है ग्रामीण जीवन शैली को संचार माध्यम बहुत प्रभावित किया है, जैसेजैसे मोबाइल-, टेलीविजन और इंटरनेट का प्रसार दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है वैसेवैसे इसका स्तर गिरता भी - जा रहा है ।अधिकतर मोबाइल, इंटरनेट और व्यक्तिगत टेलीविजन की जांच में वो घरो में कैद होकर रह गए हैं। जिसके कारण हमारी भावना में कमी आ रही है। जनसंचार के विविध साधन वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के आदर्शों को प्रस्तुत कर रहे हैं। विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा सहयोग और शांति भाईचारे का संदेश अनुरोध करने में सहायक होता है। वैज्ञानिक सोच और तर्क शास्त्र बनाने की प्रक्रिया के क्षेत्रपमें विकास हुआ है। परंपरागत रूप से ग्रामीण विकास वन और कृषि जैसे भूमि प्रधान प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग पर केंद्रित था। हालांकि वर्तमान में बढ़ते शहरीकरण और वैश्विक उत्पादन नेटवर्क में बदलाव ने ग्रामीण क्षेत्र के स्वरूपों को बदल दिया है। ग्रामीण विकास आज भी देश के समग्र विकास का मूल आधार है। देश की दो- तिहाई से अधिक आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, और गांव भारत का एक- तिहाई हिस्सा अभी भी गरीबी रेखा से नीचे है। इसलिए सरकार के लिए उत्पादक होना और उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करना अति आवश्यक है।

मूल शब्द- जनसंचार माध्यम, ग्रामीण जीवन, जागरूकता, ग्रामीण विकास, प्रचार- प्रसार ,परिवर्तन, सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव आदि।

प्रस्तावना-

किसी भी देश के सामाजिक ,आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में दूरसंचार के विकसित साधनों की अहम भूमिका रही है। सूचनाओं को बहुत जल्दी भेजने के लिए और सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य पुरातन काल से ही साधन खोजना आ रहा है। पुरातन काल में

संदेश भेजने के लिए हम कबूतर, घोड़ा, ऊँटो तथा अन्य जानवरों का सहारा लिया करते थे। समय जैसेजैसे बदलता गया विज्ञान के क्षेत्र - में क्रांति आई अब कबूतरों के स्थान पर वायुयान उड़ने लगे हैं मेघदूत के स्थान पर रेडियो एवं सूचना तरंगों ने स्थान ले लिया तथा चंद्रमा कीकट जगह कृत्रिम उपग्रहों ने लिया।

संचार शब्द अंग्रेजी के 'common' शब्द से बना जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'communicare' से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है एक समान संचार। संचार व साधन है जिसमें संगठित क्रिया तथ्यों, सूचनाओं ,विचारों, विकल्पों एवं निर्णय का दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य व्यावसायिक उपक्रमों के मध्य आदानप्रदान लिखित-प्रदान होता है। संदेशों का आदान-, मौखिक अथवा सांकेतिक हो सकता है। माध्यम ,बातचीत ,विज्ञापन टेलीविजन ,समाचार पत्र, ई-मेल, पत्राचार आदि कुछ भी हो सकता है। संचार को संदेशवाहन, संप्रेषण अथवा संवहन आदि समानार्थी शब्दों से पुकारा जाता है।

संचार में दोनों पक्ष सक्रिय रूप जुड़े होते हैं चाहे वे आमनेसामने बैठने अथवा व्यक्तिगत रूप-सामने बैठे हो या नहीं आमने- से संचार में लगे पक्ष बारी- बारी से कभी संचारक और कभी प्राप्तकर्ता की भूमिका ग्रहण करते हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बोलता है जो फिर पहले व्यक्ति से बोलता है और इस तरह यह प्रक्रिया जारी रहती है और व्यक्तित्व स्थिति में जैसे जन्म माध्यमों में आमतौर पर संचार की स्थिर दशा होती है। माध्यम संदेश के स्रोत की ओर प्राप्तकर्ता स्रोत की भूमिका अदा करते हैं। जनसंचार वर्तमान में सबसे शक्तिशाली कि हम समसामयिक संसाधन है। नए दौर में जनसंचार के सभी संसाधन उच्च मूल्य आदर्श को समझ में प्रचार- प्रसार करने में सहायक होते हैं लेकिन जनसंचार के अनेकों सकारात्मक गुण भी है। इन साधनों में जिस प्रकार से व्यक्ति समाज प्रभावित किया है वह अद्भुत है नई संचार तकनीक के अंतर्गत दूरसंचार टेलीकॉम, टेलीप्रिंटर ,अंतरिक्ष ,संचार, मोबाइल आदि संवाद संप्रेषण के नए संसाधनों से दुनिया से सिकुड़ गई है। इस संसार में ऐसा कोई देश नहीं बचा है जिसके बारे में हम नहीं जानते अब ज्ञान स्रोत केवल पुस्तक के शास्त्र न रहकर इंटरनेट हो गया है। मानविकी संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में नई परिभाषाएं गढीं जाने लगी हैं ।प्रकृति एवं पर्यावरण के क्षेत्र में संचार साधनों ने काफी उन्नति की है ।ग्रामीण क्षेत्र की उन्नति नवीन तकनीकी का परिणाम है। ग्रामीण विकास एक ऐसा शब्द है जो अर्थव्यवस्था को बेहतरीन बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्र के विकास हेतु किए गए कार्यों पर केंद्रित है। हालांकि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर ज्यादा ध्यान देने और नई पहलुओं की आवश्यकता है जैसे शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, बिजली सिंचाई आदि का विकास, कृषि विस्तार एवं अनुसंधान के लिए सुविधाएं, रोजगार के अवसर, रीड की उपलब्धता। संचार नीति का उद्देश्य ग्रामीण संचार गतिविधियों को व्यवस्थित रूप से बढ़ावा देना होगा, विशेष रूप से इंटरैक्टिव रेडियो, टेप रिकॉर्डर और वीडियो निर्देशात्मक कार्यक्रमों जैसे अन्य सफल माध्यमों को भी। कंप्यूटर और इंटरनेट अभी ग्रामीण समुदायों के लिए सुलभ नहीं हो सकते हैं लेकिन संचार मध्यस्थों और कृषि विस्तार एजेंटों के लिए उपयोगी है जो ग्रामीण आबादी को जानकारी प्रदान करते हैं। मोबाइल फोन जैसे अन्य उपकरण व्यावहारिक सूचनाओं के आदानप्रदान के लिए काफी संभावनाएं रखते हैं। आज गांव में कृषि और बुनियादी जरूरतो संबंधित जानकारी प्राप्त करने - वाले अंतिम उपयोगकर्ताओं तक पहुंचने के लिए संचार माध्यम सबसे शक्तिशाली और किफायती माध्यम है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं और गरीबों के साथ काम करने वाले मध्यस्थ उपयोगकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण साबित (आईसीटी) हुई है। प्रायोगिक अनुभवो से पता चलता है कि विभिन्न माध्यम कृषिउत्पादकों को कृषि नवाचारों, बाजार मूल्य, कीटनाशकों और मौसम संबंधी चेतावनियों के बारे में जानकारी और सलाह प्रदान करने में उपयोगी है। संचार के द्वारा सामाजिक आचार व्यवहार में बड़े परिवर्तन आए हैं। परंपरागत समाज का स्वरूप बदल गया है।

सामाजिक पक्ष-आधुनिक संचार माध्यम गांव के जीवन शैली को काफी हद तक प्रभावित किया है। गांव में परंपरागत रहनसहन - वेशभूषा एवं आचार- विचार में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार संचार माध्यमों की भूमिका व्यक्ति एवं सामाजिक विकास के लिए अति आवश्यक है।

राजनीतिक पक्ष- संचार माध्यमों ने अपनी उपयोगिता के रूप में राजनीतिक गतिविधियों के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इससे राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा मिला है। और लोगों में राजनीतिक गतिविधियों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि होती है। चुनाव के पहले होने वाले जनमत संग्रह राजनीतिक संचार के लिए महत्वपूर्ण पहलू है। जनसंचार के द्वारा आम जनता की जरूरतों उनकी इच्छाओं एवं सोच प्रकट होती है। इन सबसे राजनीतिज्ञों को अपने कार्यकलापों के बारे में फीडबैक मिलता है।

आर्थिक पक्ष- भारत में राष्ट्रीय विकास की अवधारणा वस्तुतः भारत के गांव के विकास में सन्निहित है। आर्थिक विकास की धूरी कृषि का विकास है। कृषि की स्थिति में सुधार हेतु संचार साधनों का सम्यक प्रयोग करके प्रौद्योगिकी ज्ञान तकनीकी एवं सूचनाओं से ग्रामीण किसानों को अवगत कराया जा सकता है तथा शासकीय व शासकीय सहायता से भी लाभान्वित किया जा सकता है।

शैक्षिक पक्ष - जब टेलीविजन रेडियो की खोज हुई तो संचार मध्य में बहुत तेजी से क्रांति हुई आकाशवाणी और दूरदर्शन ने शहरी क्षेत्र के साथसाथ ग्रामीण क्षेत्र में भी लोकप्रियता बनाई। मनुष्-य की मानसिकता में बदलाव लाने में सफल रहा पढ़ने- लिखने और सीखने के अलावा व्यक्ति के दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले आयाम में भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने प्रभावित किया।

धार्मिक पक्ष -गाँव में रूढ़िवादिता और अंधविश्वास में तेजी से परिवर्तन आ रही है जनसंचार के विभिन्न साधन राष्ट्रधर्म के विकास के साथसाथ अंतरराष्ट्रीय सद्भावना के आदर्श को प्रस्तुत कर रहे हैं। क्षेत्र में वैज्ञानिक सोच और तर्क-- वितर्क करने की प्रक्रिया का विकास हुआ है।

अपराध एवं जनसंचार- सामाजिक जनसंचार माध्यम समाज का दर्पण है। समाज में आए दिन घट रही घटनाओं का विश्लेषण आम लोगों तक पहुंचाने का कार्य करता है। यह समाज में जहां अनेक प्रकार की गतिविधियों का निवारण तथा ज्ञानपरक तथ्य प्रस्तुत करते हैं वहीं इसमें सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होती है।

ग्रामीण जीवन में जनसंचार का प्रभाव-

(A) .सकारात्मक प्रभाव -

1.कृषि आय में वृद्धि- इंटरनेट, टीवी , किसान एप्स के द्वारा किसान आधुनिक कृषि करने की विधि, बाजार मूल्य और मौसम की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं जिससे उनकी कृषि और आर्थिक सुधार में वृद्धि हो रही है।

2. साक्षरता और जागरूकता- गांव में ऑनलाइन शिक्षा के द्वारा कौशल विकास साक्षरता महिलाओं में जागरूकता की वृद्धि हुई है जिससे युवा नई नौकरियों की ओर आगे बढ़ रहे हैं।

3. ग्रामीण संस्कृति में परिवर्तन- टीवी, इंटरनेट और सोशल मीडिया द्वारा गांव में आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण देखा जा रहा है। पारंपरिक पारंपरिक रहनसहन-, खानपान-,वेशभूषा रीति- रिवाज में बदलाव आ रहा है।

3.राजनीति जागृति- ग्रामीण जनता को अपने अधिकारों और सरकारी नीतियों के प्रति संचार माध्यमों ने जागरूक किया है। जिससे मतदान व्यवहार और राजनीति भागीदारी में सुधार हुआ है।

4.स्वास्थ्य और कल्याण- स्वास्थ्य संबंधी जानकारी और टेली मेडिसिन के माध्यम से दूर दराज के क्षेत्र में भी लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं मिल रही हैं ।

5. कनेक्टिविटी- मोबाइल और इंटरनेट के कारण गांव के लोग अब बाहरी दुनिया से जुड़ रहे हैं जिससे सामाजिक जुड़ाव बढ़ा है।

(B). नकारात्मक प्रभाव-

1.सूचना वंचित वर्ग - आज भी कुछ सुदूर गांव के क्षेत्र में तकनीक की कमी के कारण सूचना अमीर और सूचना वंचित के मध्य अंतर बना हुआ है।

2.फेक न्यूज़ और मानसिक स्वास्थ्य - सोशल मीडिया के प्रसार के साथ गलत जानकारी का फैलाव एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी ग्रामीण युवाओं में देखी जा रही है।

विश्व दूर संचार दिवस का इतिहास-

विश्व संचार का इतिहास से शुरू होता है 1865 में 17, जब पेरिस में की स्थापना हुई। उसे समय आधुनिक "अंतरराष्ट्रीय टेलीग्राफ संघ" प्र-संचार का सबसे तेज मध्य था और विभिन्न देशों के मध्य संदेशों का आदानदान करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय समन्वय की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इसी उद्देश्य से इस संगठन की स्थापना की गई। आगे चलकर यही संस्था अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार संघ के रूप में विकसित हुई संयुक्त राष्ट्र की विशेष एजेंसी बन"अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार संघ" में 1947गई। यह विश्व की सबसे पुरानी अंतरराष्ट्रीय तकनीकी संस्थानों में से एक है, जिसे संचार व्यवस्था को व्यवस्थित और समन्वित बनाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

21वीं साड़ी में जब इंटरनेट और डिजिटल तकनीकियों का प्रभाव तेज गति से बढ़ने लगा तब संयुक्त राष्ट्र महासभा न ेि वर्ष में 2005 "की अवधारणा को वैश्विक महत्व प्रदान किया। इसके बाद विश्व को "सूचना समाज" world telecommunication and information society day (WTISD)" के रूप में व्यापक पहचान मिली। केवल इसका उद्देश्य दूरसंचार तकनीक का प्रचार नहीं,

बल्कि सूचना और डिजिटल तकनीक के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ,सांस्कृतिक प्रभाव पर वैश्विक विमर्श को प्रोत्साहित करना है। हर साल इस दिवस के लिए एक विशेष थीम निर्धारित की जाती है। इन टीमों के द्वारा डिजिटल समावेशन, सतत विकास, लैंगिक समानता, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर सुरक्षा और नवाचार जैसे समकालीन विषयों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दूरसंचार केवल अब तकनीकी विषय नहीं रह गया बल्कि वैश्विक शासन और मानव विकास का केंद्रीय तत्व बन चुका है।

उद्देश्य -

1. जनसंचार माध्यमों द्वारा ग्रामीण सामाजिक- आर्थिक परिवर्तन का अध्ययन करना।
2. जनसंचार द्वारा ग्रामीण समाज के लोगों की सामान्य जीवन का अध्ययन करना।
3. जनसंचार द्वारा ग्रामीण लोगों की समस्याओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
4. जनसंचार द्वारा ग्रामीण विकास का अध्ययन करना ।

जनसंचार का महत्व-

आज जनसंचार का जितना महत्व है पहले उतना महत्व नहीं रहा। इसका मुख्य कारण है पहले कभी इतनी अधिक व्यक्तियों को इतना अधिक बातों को इतने कम समय में जानने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सही संचार प्रक्रिया द्वारा हर स्तर की चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो, समूह स्तर पर हो या देश- विदेश स्तर पर हो उत्पन्न विसंगतियां को दूर कर सकते हैं।सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवर्तन लाने के लिए संचार प्रक्रिया आवश्यक है। किसी देश का विकास संचार की सफल तकनीक पर भी निर्भर करता है चाहे वह विषय वस्तु कृषि, पशुपालन, विज्ञान अथवा औद्योगिक क्षेत्र की हो बिना संचार के प्रगति संभव नहीं है।

निष्कर्ष-

जनसंचार माध्यम के प्रभाव का अध्ययन करने के बाद निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उसके अनुसार जनसंचार एक ऐसा माध्यम है जो ग्रामीण विकास में तीव्रता से परिवर्तन आया है। जनसंचार माध्यम जैस टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र-पत्रिकाएं और फिल्म आदि से सिर्फ ग्रामीण लोगों को जानकारी ही नहीं मिली इन माध्यमों के ज्ञान से उनमें जागृति सबसे ज्यादा इन जनसंचार माध्यमों के द्वारा ही पहुंचाई जाती है। सामाजिक जनसंचार माध्यमों ने लोगों और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया हैं। अब लोग जानने लगे हैं कि जिस समूह में उन लोगों का लोगों रहनसहन हुआ है उस समूह में जीने का रास्ता ही एकमात्र नहीं है बल्कि जीवन जीने के अनेक रास्ते के हैं । सामाजिक जनसंचार में - हुई क्रांतिकारी परिवर्तन राष्ट्र के अंदर विभिन्न समूहों में बैठे हुए समाज को एक सामाजिक संगठन के मूल्य एवं आदर्श एक समान रूप में विकसित हो रहे हैं तो दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। सब ग्रामीण जीवन के सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए निर्गुणी निर्माण स्वास्थ्य कृषि रामचरण विकास योजना उद्योग में आधुनिक तकनीक का अनुकूलन आवश्यक है जनसंचार माध्यम द्वारा ग्रामीणों में आधुनिक तकनीक का उपयोग करने पर जोर दिया जा रहा है इसका प्रभाव ग्रामीण लोगों पर स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है।

सुझाव-

ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक है विभिन्न संचार माध्यम में ग्रामीण लोगों की जरूरत इच्छाओं को व्यक्त किया जाए और उनका प्रचार प्रसार किया जाए प्रचार प्रसार स्वयं में विचारों, सुझावो और आवश्यकताओं को जोड़ने का एक शक्तिशाली साधन है जो सही हाथों में पहुंचकर ग्रामीण समुदाय के उत्थान को सुनिश्चित कर सकता है। योजनाएं संघर्ष नीतियों और शैक्षिक सेवाएं सभी को सही मंच का उपयोग करके बाहरी दुनिया से संवाद स्थापित करने की सरल माध्यम से बढ़ावा दिया जा सकता है। समाज कल्याण इस्माइल फाउंडेशन जुड़ा है और हमारा मंच वह साधन है जहां हम जरूरतमंदों के विकास के लिए उनकी जरूरत का ख्याल रखते हैं। इस्माइल फाउंडेशन आजीविका स्वास्थ्य, उचित शिक्षा, महिला सशक्तिकरण के द्वारा समाज को लाभ पहुंचाने का प्रयास करता है। जनसंचार माध्यम कृषकों की कृषि में हो रहे आधुनिक तकनीको , वैज्ञानिक शोधों की जानकारी देकर उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। किसान उन्नत किस्म के बीच एवं नएनए उर्वरकों खादो दवाओ का प्रयोग करके अपना उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते - हैं। इसके साथ ही किस मौसम में किस फसल की खेती की जाए कौन सा बीज बोया जाए किस दवा से फसल को कीटाणुओं से बचाया जाए और फसल को कहा किस प्रकार भेजी जाए जिससे कि अधिक लाभ प्राप्त हो इसकी समुचित जानकारी जनसंचार माध्यमों द्वारा दिया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

* https://wwe.jetir.org
* उदय सिंह राजपूत आदिवासी विकास एवं गैर सरकारी संगठन रावत पब्लिकेशन (2010) जयपुर, नई दिल्ली, बेंगलोर ,हैदराबाद ,गुवाहाटी पृष्ठ संख्या- 3
* गोपाल त्रिपाठी भारत की जनजातियों का एकीकरण वन्यजाति पृ (1973). संख्या 8–13
*राकेश भट्ट जनजाति उद्यमिता का विकास हिमांशु पब्लिकेशन जयपुर पृ (1995).संख्या 13
*हितेंद्र सिंह राठौड़ जनसंचार साधन और ग्रामीण समुदाय हिमांशु पब्लिकेशन (2010), उदयपुर पृष्ठ संख्या- 3
* www.google.com-ग्रामीण समाज में जनसंचार का प्रभाव।
* https://www.smilefouncationindia.org/ ।
* Ddnews.gov.in-विश्व संचार दिवस: डिजिटल, क्रांति वैश्विक संवाद ।